बूँद बूँद मौत

दिनेश खरे


दिनिशा प्रकाशन

प्रथम संस्करण नवम्बर, 1984

प्रकाशक
दिनिशा प्रकाशन
1594 नेपियर टाउन
जबलपुर (म० प्र०) 482-001

आवरण
संध्या वासुदेव व दिनेश खरे

मूल्य
सजिल्द 18 रुपये / अजिल्द 10 रुपये

मुद्रक
कैम्परवानी प्रेस, प्रयाग

क्रमांक 001 84

BOOND BOOND MAUT—Short Stories
by Dinesh Khare

मेरे जीवन से

सम्बद्ध

तीन महत्वपूर्ण मित्रों

निशा,

सत्य नारायण यादव

और

माइकेल फांसिस को

सस्नेह समर्पित

अपनी ओर से

मुझे कहानी से ज्यादा सशक्त कोई अन्य माध्यम प्रतीत नहीं होता जो व्यक्ति की अंत वेदना, उसके द्वन्द्व उसके संत्रास, उसकी निराशा और विश्वास व उसके मनोविज्ञान को बेलाग और बेलोस अभिव्यक्त कर सके। अपने क्षणिक जीवन मे इसान का यायावरी मन किन-किन स्तरों और सतहों से गुजरता है वह कल्पना के परे प्रतीत होता है। लेकिन कहानी ऐसे यायावरी मन को एक अस्थाई ठौर या ठिकाना देती है—इसमे दो मत नहीं हैं। इसान के जन्म के साथ ही कहानी का जन्म हुआ है और शायद इसलिये ही कहानी भावना-भिव्यक्ति की सबसे सरल, सुलभ लेकिन प्रभावशाली माध्यम रही है।

इसान की बदलती लालसाओं, समाज के बाहिर बदलते रंगों ने कहानी के तेवर बदले हैं। उसकी विषय-वस्तु से लेकर उसके शिल्प मे भी अद्भुत परिवर्तन आये हैं। विज्ञान के अवतरण से भावनाओं का मशीनीकरण हुआ है और मशीनीकरण से सभूत कृत्रिमता ने जो खोखलापन हमारे जीवन मे प्रविष्ट कराया है, वह अब हम खलने लगा है। मानवीय सम्बन्धो के बीच जो एक अदृश्य सेतु सदियो से विद्यमान था, उसे नेस्तनाबूद करने मे विज्ञान अगणी है। विज्ञान से जो कुछ हमने पाया है, जिन क्षणभंगुरता का आभास हम हुआ है, उससे कही ज्यादा महत्वपूर्ण हमने खो दिया है या फिर सभ्यता के क्रमिक विकास की गतिशीलता मे खोते जा रहे हैं। इसे शायद ही फिर कभी हम पा सकें। अनुभूति और अध्यात्म की तुलना मे विज्ञान का स्वभाव पुनर्जन्मी सिद्ध हुआ है। अध्यात्म से प्राप्त अनुभूतियों ने आदमी को शांति प्रदान की है उसे ऊर्ध्वमुखी बनाया है उसमे समर्पण पैदा की है व मानवेतर भावनाओं को समझने की कूवत पैदा की है। लेकिन वैज्ञानिक उपलब्धियों ने उसी आदमी को स्वार्थी अहंकारी, स्वकेन्द्रित और अधोमुखी बना दिया है। शायद इसी कारण से वर्तमान कहानियों की

अमस्यली यथाथ की मागे ह । कहानियां का जो क्रम आज चल रहा है, वह इसान के वाह्य व अंत परिवेश के बीच पनप उठाकर खडे हुए द्वन्द्व उरव को प्रतिबिम्बित करता है ।

प्रस्तुत कहानियां की जमीन कुछ ऐसी ही कही जा सकती है । मैं पेशे से इंजीनियर हूँ कहानीकार नहीं । लेकिन मेरे इस पेशे को ही यह श्रेय जाता है कि उसने मुझमें ऐसी अंत दृष्टि पैदा की कि मुझे यथार्थ और अदृश्य मय के बीच पनप रहे द्वन्द्व को समझने का अवसर मिला है । मुझे महसूस होता है कि विज्ञान पढ़ने वाला छात्र कभी न कभी ऐसी स्थिति से अवश्य गुजरता है । या फिर कभी गुजरेगा । वस्तुतः उसमें ये कहानियाँ अपने चहुँओर व्याप्त परिवेश को समझने में सहायक होगी । आम आदमी तो इन कहानियों में अपना प्रतिबिम्ब अवश्य ही पायेगा क्योंकि ये कहानियाँ हर क्षण उसके चिंतन व वजूद का स्पर्श कर रही हैं ।

हो सकता है कि इस संग्रह में प्रस्तुत कहानियां को आपने कहीं न कहीं पढ़ा भी हो लेकिन विभिन्न जगहों पर बिखरी इन कहानियों को एक सूत्र में पिरोकर समग्र रूप में आपके सामने रखने में मुझे अकल्पनीय हर्ष हो रहा है । अपने इस पृष्ठ में कहानियों के बारे में भूमिका बाँधना कहानी के चरित्र के साथ अन्याय होगा । मैं नहीं चाहता कि भूमिका में प्रस्तुत विवेचना किसी प्रकार का पूर्वाग्रह पैदा करे और वह पूर्वाग्रह आपको कहानी को समझने में एक खास नजरिये से निर्देशित करे । अतः सारी कहानियाँ आपके बगैर पाइन्ट मार्टम के लिये प्रस्तुत है ।—हाँ एक बात अवश्य स्पष्ट करना चाहूँगा कि इस संग्रह में मेरी कहीं भी प्रकाशित होने वाली पहली कहानी भी है जिसे आप आसानी से पकड़ लेंगे ।

और अंत में दो शब्द उनके बारे में जिन्हें यह संग्रह समर्पित है । दोनों व्यक्ति मेरे जीवन से कुछ इस कदर जुड़े हैं कि जब तक इस शरीर में जीवतता का स्पंदन रहेगा वे अविस्मृत रहेंगे । मेरे लेखकीय व्यक्तित्व की संरचना में उनका जो अपरोक्ष हाथ रहा है, उसे वे महसूस करें या न करें मैं हर क्षण महसूस करता हूँ और करता रहूँगा ।

मई 1984 —दिनेश खरे

18 विषय-सूची

क्रम		अनुक्रम
1	दंगा	1
2	स्लम हाउस	13
3	बूंद-बूंद मौत	22
4	कटा हुआ आदमी	30
5	उद्घाटन	41
6	मोहभंग	50
7	जतिंगा	65
8	टमी म अन्त	76
9	इमर याद नही	82
10	और रामनवक मर गया	89
11	विमर्श दुकान का सलीब	101

सेंट्रल जेल की कोठरी मे बैठे-बैठे कल्लू ने गड्ड-मड्ड बालो को अपने खुरदुरे हाथो से सवारा। उसे लगा कि बाल सँवर गये हैं और किशोरावस्था मे सम्भूत इस धारणा से कि सजा-धजा पुरुष इस उम्र मे किसी अतग से कम नही होता है, उसने अपने गठीले कसरती शरीर का मुआइना किया। उसे अपने शरीर पर एक बार और नाज हो आया। जेल की कोठरी उसके उन्मुक्त चिन्तन पर कोई प्रभाव नही डाल पा रही थी। जब वह पहले-पहल जेल की चहारदीवारी मे लाया गया था तब जरूर उसे थोडा रंज हुआ था। रंज भी इस बात का था कि लोग उसे सजायाफ्ता के नाम से पुकारेंगे। लेकिन बाहर आने के बाद उसने पाया था कि दुनिया उसी गति से चल रही है। कही कुछ भी अन्तर नही आया है। उसने सोचा था कि उसके जेल से बाहर निकलते ही हजारो आखे उसको घूरना प्रारम्भ कर देगी और वह उन आखो से निकलने वाले घृणाभाव को सह नही पायेगा। लेकिन ऐसा कुछ नही हुआ। उसे बडा ही आश्चर्य हुआ था इस बात पर। गाव मे होता तो लोग उसे कह-कहकर उसका जीना मुश्किल कर देते। उसने कोने मे मायूस से पडे रशीद की ओर देखा और कहा—

"क्यो बे रशीद! क्या ऐसे ही पडा रहेगा? पता नही कल हमारी छुट्टी होने वाली है।"

"यही तो समस्या है।"

"कैसी समस्या? यार तू सोचता बहुत है। कितनी बार कहा कि दुनिया मे रहना है तो सोचो कम, करो ज्यादा। लेकिन तू समझता ही नही।"

इतने मे ही सतरी के बूट की आवाज खट्खट् करती उनके कानो मे पहुँची। वे अविचलित रहे। सतरी उनकी कोठरी के सीखचो के पास पहुँच गया। उसने झाँककर अन्दर देखा—कल्लू और रशीद जग रहे थे। उसने एक बार सोचा कि सीधा चला जाये लेकिन पहरा देते-देते वह थकान-सी अनुभव कर रहा था। समय गुजारने वाले मूड मे उसने कहा, "क्या जमूरे कल्लू, नीद नहीं आ रही है

क्या ?   छूटन की मतवाली है क्या ?" संतरी अपने बंदिया को जमूरा ही कहता था ।

'नही दरोगा जी ऐसी बात नही है । कल्लू ने कहा । वह सारे पुलिस वाला को दरोगा जी ही कहता था ।

"दरोगा जी एक विनती है । जाते-जाते मेहरबानी कर दे तो सारी जिन्दगी आपका नाम भजेंगे ।" कल्लू ने कहा ।

'बोल क्या बात है ?"

"दरोगा जी गाजा पीने की इच्छा है । कई दिन हो गये दम मारे । यदि आप मंगवा   ।"

"क्या बकता है । यह जेल है—चण्डूखाना नही है ।"

"जेल है इसीलिये तो बोल रहा हूँ । कल बगल वाले फकीर ने बताया था कि गाजा पीना हो तो आपको बता दूँ ।"

' हूँ तो फकीरा दोगला निकला । अच्छा बोल, पैसा है अंटी में ।"

"हा जी है । पाच रुपये का मँगा दीजिये ।"

"निकाल दस रुपये जल्दी से ।"

कल्लू ने अंटी से दस का नोट संतरी को थमा दिया । संतरी के जाते ही कल्लू रशीद की ओर मुखातिब हुआ और बोला—

"यार ! तू मागुवा की तरह चुपचाप बैठा रहेगा तो फिर कैसे काम चलेगा ।

"कल्लू भाई, कल से ही रोटी की समस्या खडी होगी । कैसे काम चलेगा ।'

'दस भाई, इसमे दुखी होने की क्या बात है । जैसा अभी तक भगवान ने चलाया है अब भी चलायेगा ।   अरे यह जेल तो अपना घर ही है । जब नही चलेगा तो खुराफात करके फिर यही ।"

'लेकिन छोटी-छोटी चोरी करके कब तक गुजारा किया जाये ।"

'क्यो क्या इस बार बडा हाथ मारने की ख्वाइश है ?"

सोच तो कुछ ऐसा ही रहा हूँ ।"

"तो चुप रह। कल प्लान बनायेंगे भूरे की होटल पर बैठकर। यहाँ कुछ बोला तो गड़बड़–दीवारों के भी कान होते हैं पता नहीं।"

इतने में ही सतरी खटखट् की आवाज करता आ गया।

*　　　*　　　*

भूरे की होटल में जाकर कल्लू और रशीद चुपचाप बैठ गये। भूरे को पता था वे क्या खायेंगे। बिना कहे ही सामान उनके सामने आ गया। भूरा यदा-कदा उनके लिये मुखबिरी करता था। उनके जेल जाने पर कभी कभी वकील और कभी-कभी जमानत का भी इन्तजाम करता था। खाना खाने के बाद कल्लू ने देखा कि रशीद अभी भी मायूसी की मुद्रा में सिर नीचे किये बैठा है। उस उसकी मन स्थिति का पूरा अंदाजा था। भूरे के पास जाकर उसने कहा भूरे डियर, अपना रशीद आजकल बड़ा दुःखी है। पहली बार उसे जेल की चहार-दीवारी रास नहीं आई है। बहुत समझाया कि सोचना अपने जैसे लोगों का काम नहीं है, लेकिन पता नहीं कौन सा घुन उसे खाये जा रहा है। कहा भी कि सोचने का काम तो नेताओं का है लेकिन मानता ही नहीं है। कहता है कि " ऐसा कहकर कल्लू ने यहा-वहा देखा और भूरे के कान में कुछ कहा। भूरा रशीद की ओर देखकर बोला, 'दादू तू फिकर क्यों करता है। तेरी इच्छा पूरी होगी लेकिन सिर्फ एक ही बात है कि तुझे हिम्मत जुटानी होगी। बाकी काम मेरा है। तीन चार दिन बाद आओ। फिर सब खबर कर दूँगा। हाँ आज का पैसा, तुम्हारे हिसाब में लिखे देता हूँ।"

रशीद खटाक से उठा भूरे से हाथ मिलाया और कल्लू के साथ आगे बढ़ गया। उसकी आँखों की चमक बरसात में अचानक निकल आये सूरज की किरणों के समान हो गई।

*　　　*　　　*

तीन दिन बाद जब कल्लू और रशीद ने भूरे से सम्पर्क किया तो उसने उन्हें माल होने की खबर दी। पारेख की पायगी वाले के यहाँ सेंध लगाने का विचार रशीद ने बनाया। सेंधमारी में उसकी कोई तुलना नहीं कर सकता था। कल्लू को लग रहा था कि इस बार की चोरी कुछ और ही गुल खिलायेगी।

वह मन ही मन घबरा रहा था। जब-जब वह घबराया है कुछ ऐसा हुआ है जिसे उसके अंतस ने स्वीकार नहीं किया है। इस बार भी वह कुछ ऐसा ही महसूस कर रहा था। कल्लू ने कभी भी बड़ी चोरिया का विचार अपने मन में नहीं लाया था। उसका ख्याल इस मामले में बिल्कुल ही अलग-थलग था। चोर का लेबल लगते ही उसने महसूस किया था कि शरीफ आदमी की जिन्दगी जीना और शराफत से रोजी-रोटी कमाना उसके भाग्य में नहीं है। कई बार सोचता था 'काश मैं डाकू होता तो आत्मसमर्पण करके नई जिन्दगी प्रारंभ कर सकता।' लेकिन फिर मन ही मन कहता 'ऐसे भाग्य सबके कहां।'

रशीद से दोस्ती होने पर उसने एक अच्छा मित्र पा लिया था। लेकिन कई बार रशीद की चुप्पी और उसकी बड़ी-बड़ी योजनायें उसका दिल दहला देती थी। भूरे की मुखबरी ने जहां रशीद को चैतन्य कर दिया था वहीं एक अनिमन्त्रित भय उसके चोर-दिल में भी पैदा कर दिया था।

रशीद ने सेंध खोदकर पारेख की पायल वाले की दुकान तक पहुँचने का रास्ता बना लिया था। वे दोनों मंगल का इंतजार कर रहे थे जब पूरा सराफा बंद रहता था। सोमवार की रात को चोरी करने की योजना बनी थी और फिर बुधवार को उसकी प्रतिक्रिया पता करने की। सोमवार की रात को उन्होंने ढेर सा जेवर चुराया और जैसे ही बाहर निकलने लगे, गोरखे चौकीदार ने उन्हें देखकर हल्ला मचा दिया। कल्लू के शरीर से पसीना छूटने लगा। लेकिन रशीद बिल्कुल अविचलित सा खतरे से निपटने को तैयार होने लगा था। कल्लू ने जब माल छोड़कर भाग जाने का सुझाव दिया तो उसने हिश्श कहकर उसका हाथ झिड़क दिया। लोगों के जागने के पहिले ही रशीद ने पोटली कस कर पकड़ी और कल्लू को खींचकर बाहर लाया। गोरखे को धक्का मारकर गिराया और दोनों भाग खड़े हुए। समस्या थी कि भागकर कहां जायें। भूरे के यहां जा नहीं सकते थे—कारण कि पुलिस सबसे पहले उन्हें ही उस अड्डे पर शक पर धर पकड़ती।

रशीद ने क्षण भर को सोचा और फिर बोला, "मुसलिम कबरिस्तान चलते हैं।"

"तेरा दिमाग तो खराब नहीं हो गया है। वहाँ क्या करेंगे जाकर।"

"पुलिस को शक कभी भी नहीं होगा कि चोर वहाँ भी जा सकते हैं। माल वहीं छिपाकर भाग जायेंगे। फिर समय रहते निकाल लेंगे।"

"चल, वहीं भी चल जल्दी। नहीं तो अब मुनह खैर नहीं। पुलिस पकड़कर पकड़ेगी।"

दोनों भागकर कबरिस्तान चल गये। जाते ही माल छिपाने की समस्या खड़ी हो गयी। सुदूर आकाश में खिला अधखिला चाँद जमीन की स्थिति का कुछ-कुछ स्पष्ट कर रहा था। रशीद ने जल्दी-जल्दी मुआइना किया। उसे एक ताजी खुदी कब्र दिखाई दी। कल्लू का हाथ पकड़कर उसने खींचा। जल्दी-जल्दी बोला—"इस ही खोदकर इसमें माल छिपा देते हैं। किसी को भी शक नहीं होगा।" दोनों ने जल्दी-जल्दी कब्र का कुछ ही हिस्सा खोदा था कि तभी आवाज सुनाई दी "कौन है।" रशीद का मुँह खुलते-खुलते रह गया। उसने महसूस किया कि माल छिपाने के बाद कब्र पूरना उनके वश की बात नहीं है। उसने जल्दी से पोटली संभाली और चुपचाप एक पुरानी कब्र की तरफ खिसक गया। कब्र के पास बने एक छेद में जिसे शायद कबर-बिज्जू ने खोद रखा था, पोटली रखकर उसे जल्दी-जल्दी बंद किया। कल्लू उसके साथ-साथ पास सरक आया था। 'कौन है, कौन है' की आवाज अभी भी आ रही थी। दूर से टिमटिमाती लालटेन के पास आते दिखते वे दोनों चुपचाप पास लगी बेशरम की झाड़ियों में छिप गये। लालटेन कबरिस्तान के पास आकर खुदी हुई कब्र के पास जाकर रुक गई। लालटेन पकड़े आदमी ने कब्र को देखा और तेजी से उल्टे पैर भाग खड़ा हुआ। कल्लू और रशीद की जान में जान आ गई। वे चुपचाप उठे और भाग गये।

* * *

दूसरे दिन पूरे शहर में हल्ला मच गया कि कुछ सिरफिरों ने मुसलिम कबरिस्तान में खुदी एक ताजा कब्र को खोद डाला है। खबर कोई खास नहीं थी लेकिन उसके खास बनने का पूर्ण अंदेशा था। चौकीदार की सूचना पर मृतक के परिवार वाले दौड़े आये। उन्होंने भी कब्र को देखा लेकिन वे यह न समझ पाये कि उस कब्र को खोदकर किसी को क्या मिल सकता था। समाचार पत्र में पारेख जी पायल वाले के यहाँ हुई चोरी का वर्णन सुर्खियों के साथ

प्रकाशित किया गया था। आदतन पत्रकारों ने एक बार फिर पुलिस की नाकामयाबी और शहर में बढ़ती चोरी आदि की वारदातों की चर्चा शुरूकर की। लेकिन पुलिस इस प्रकार की वारदातों और चर्चा से बेखबर अपने नियमित कार्यों में लगी हुई थी।

लेकिन सामने से शान्त दिखने वाली (बात) अपने गर्भ में कुछ भयानक घटना ही छिपाये रखी थी। कुछ असामाजिक मुसलिम तत्व अपने ही समान मुखौटा लगाये हिन्दुओं के साथ कबरिस्तान पहुँच गये थे। उन्हें न ही तो मुर्दा कब्र से मतलब था और न ही मृतक व्यक्ति की अस्मिता से। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि पारख जी पायल वाले के यहाँ हुई सेंधमारी का सम्बन्ध उस कबरिस्तान से कहीं न कहीं अवश्य है। उनकी छठी इन्द्रिय पुलिस व्यवस्था की तुलना में कहीं ज्यादा ही जाग्रत थी। कबरिस्तान में पहुँचकर उन्होंने चोरी को सूंघने की कोशिश की लेकिन सफलता न मिली। शायद सफलता मिल जाती लेकिन इन लोगों के वहां पर हुये जमाव में चोरी का माल ढूंढना सम्भव नहीं था। और फिर यह तो मात्र शक की बात थी। यदि कल्पना पर चढ़ा कुलम्मा पुख्ता होता तो फिर शायद माल ढूंढने का प्रयास समय रहते किया जा सकता था। सबके सब चुपचाप बाहर निकल आये।

*　　　　*　　　　*

कबरिस्तान के बाहर लगे देशी आम की छांव में बैठकर उनने चिलम निकाली और गांजा भरने लगे। कादिर खान और रम्मू उस्ताद ने एक दूसरे की ओर खोजी आंखों से देखा। शायद दोनों के अन्दर उफनती बातों की आवृत्ति तरंग एक ही मापदंड पर आ रही थी। चिलम की कश लगाते ही कादिर खान बोला—"रम्मू मेरा मन अभी भी कह रहा है कि चोरी का माल इसी कबरिस्तान में छिपा रखा हुआ है। मन को बहुत समझाता हूँ लेकिन मन मानता ही नहीं है।'

'देख भाई, बेकार की बातों में सिर खपाने से कुछ नहीं मिलना। हाँ यदि हम चाहें तो इससे ज्यादा माल बटोर सकते हैं।'

"कैसे ?'

"बनो मत, जैसा मैं सोच रहा हूँ वैसा तुम भी सोच रहे हो। हम मुजरिमों की एक ही कौम होती है और एक ही धरम होता है। आतंक, हो-हल्ला और लूटमार।"

"लेकिन हमारे-तुम्हारे भर सोचने से काम नहीं होगा। साथ के लोग कितना साथ देंगे।"

"सब देंगे। क्या इनके पास कुबेर का कोई खजाना है जिसके भरोसे ये जिंदा हैं। हमारा दिमाग और इनकी मशक्कत रंग ला सकती है।"

दोनों ने साथियों की तरफ उनकी ओर देखा। चिलम की नशा और भी तेज हो गई। सबकी आँखों में पशुवत वहशीपन तैरने लगा। कादिर और रम्मू ने सबको अपनी योजना से अवगत कराया तो सबके सब एक साथ खड़े होकर फिल्मी अंदाज में हाथ ऊपर करके बोल उठे—"डन"। चिलम एक बार और भरी गई और अपनी जाति में शामिल करने वाले कपटाइजेशन वाले तरीके से सबको प्रसवार पन का गई। हर आदमी चिलम पीता जाता था और "चीयर अप" कहकर नई योजना के लिये निर्मित जाति में शामिल होने का संकल्प भी जताता जाता था।

*　　　　*　　　　*

दूसरे दिन सुबह ही शहर के एक कोने में कादिर के साथियों ने आवाज लगाना चालू कर दिया। वातावरण बनने में देर नहीं लगती। सफेदी और मजमों वालों के देश में दर्शकों की भीड़ इकट्ठा होने में कितना समय लगता है। चतुर्दिक व्याप्त वातावरण आवाजों से गुंजायमान हो गया—"कब्रिस्तान की खुदी गई मजार हिन्दुओं का अत्याचार है। कब्र जान-बूझकर शक्ति जताने और दबाव डालने के लिये खोदी गई है। हम इसका बदला लेना है।　　　　सब इकट्ठे हो जाओ इस्लाम खतरे में है।" आवाजों ने जादू का काम किया। लोगों के शुद्ध सरल मन घृणा और विद्वेष से मलिन हो गये। न चाहते हुये भी लोग उस जुलूस में जुड़ने लगे। दिशाहीन लोगों का वह सैलाब गली और कूचों से गुजर-गुजर कर लोगों के दिलों में वैमनस्य के बीज अंकुरित करने लगा। कादिर के साथी भीड़ में फैले हुये मनोरंजन को बना रहे थे। कुछ लोग बीच-बीच में पत्थर भी मारते जाते थे।

जुलूस की खबर क्षण भर में ही शासन को पहुंच गई। पुलिस जवानों के दस्ते जुलूस के नियन्त्रण के लिये रवाना होने के पहिले ही रम्मू ने पूर्व नियोजित तरीके से शहर के अन्य भाग से मुसलमानों के खिलाफ जेहाद छेड़ दिया। उसके साथी भी गली कूचों में घूम-घूम कर चिल्ला रहे थे—"मुसलमानों द्वारा किया जाने वाला हल्ला बबुनियाद है। कब्र इन्हीं में से किसी ने खोदी है। वे स्वयं ही बलवा करके हिन्दुओं से झगड़ा करना चाहते हैं। हम क्या करेंगे इनके कब्रिस्तान में जाकर। सब कुछ झूठ है-बिलकुल झूठ। कौन नहीं जानता है कि कादिर गुंडा है और इसी ने यह सब जान-बूझकर कराया हो।" इसी प्रकार के अन्य नारों से गली-कूचे गूंजने लगे। लोग बदले की भावना से लाठियाँ लेकर तैयार होने लगे।

रम्मू और कादिर को खबर मिल गई कि पुलिस आने वाली है। दोनों ही तेजी से गल्ला बाजार और सराफे की ओर अपने-अपने साथियों के साथ भागे। उनके साथी पत्थर फेंकते जा रहे थे और गाली बकते जा रहे थे। वातावरण उनकी आशानुरूप गर्म हो चुका था। पुलिस दस्तों के आगमन के पहिले ही उनने जुलूस के साथ दुकानों पर धावा बोल दिया। दूकानें फटाफट बन्द होने लगीं। लेकिन वे लोग बिल्कुल बाघ थे। दूकानों के दरवाजे टूटने लगे। बदहवास जनता बिना वजह घृणा से उनका साथ दे रही थी। कुछ नारे लगाने में व्यस्त थे लेकिन बहुतों ने अपने उद्देश्य को भुलाकर दुकानें लूटने में ज्यादा दिलचस्पी दिखाई। सारा जुलूस लूटपाट की प्रतिक्रिया में तब्दील हो चुका था।

पुलिस के आते ही भगदड़ की गति में तीव्रता आ गई। नियन्त्रण की स्थिति बनाने के लिये डी० एम० ने एक सौ चौव्वालीस धारा लगा दी। नगर सेना के जवान अपने एक मात्र शस्त्र लठ्ठ के सहारे भीड़ को तितर-बितर करने में लग गये। लेकिन स्थिति नियन्त्रण के बाहर पहुँचने लगी थी। धर्म के रक्षक उसकी रक्षा के लिये दुकानें लूटने और पुलिस वालों पर पथराव करने में व्यस्त थे। डी० एम० ने अश्रु-गैस के उपयोग का आर्डर दे दिया। वायरलेस से जिलाधीश को खबर कर दी गई। वे भी पहुँच गये। स्थिति से निपटने के लिये जिलाधीश ने कर्फ्यू लग जाने की घोषणा कर दी। सारे आततायी तेजी से भागे। जिधर

हाथ म जो आया ले भागा । रम्मू और कादिर भूमिगत हो गये । उनके साथी लूट का माल इकट्ठा करके शान्त हो गये थे । बँटवारे का निर्णय स्थिति क शान्त होने पर छोड दिया गया ।

पुलिस ने रम्मू और कादिर को ढूढने के लिये जाल बिछा दिया । उनको ढूढ निकालना कठिन था । क्योकि कही म भी उनक बारे मे कोई सूचना नही मिल पा रही थी । लेकिन पुलिस की सारी खानबीन की सूचना उन तक बराबर पहुँचती जा रही थी । जब वातावरण कर्फ्यू के कारण कुछ दिनो म नियन्त्रित सा दिखाई देने लगा तो रम्मू और कादिर ने आत्म-समर्पण का निर्णय लिया । उन्हे पता था कि उनका बच निकलना मुश्किल है । हाँ इतना जरूर था कि पुलिस की मार से वे अब बच गये थे । यदि दगे के दौरान वे पकड लिये जाते तो पकडा ही उनके शरीर को रुई की तरह धुन दिया जाता । लेकिन अब स्थिति दूसरी थी । उनकी पिटाई का मतलब था—दगा भडकाना जो शासन कतई नही कर सकता था । और फिर पैसा कमाने के लिये किस नही अपमान सहना पडता है ।

*　　　*　　　*

मुसलिम कबरिस्तान पर पहरा बैठा दिया गया था । शहर का आवक दवदार की लकडी क सामान तीव्र जनवर फुसफुसी राख म तब्दील हो गया था । लोगो के दिमाग स दगे का भय कम हो गया था । जनजीवन सामान्य होता जा रहा था । कर्फ्यू पहले कुछ ढीला कर दिया गया था और फिर बिल्कुल ही हटा दिया गया था ।

दगा होते ही सबसे ज्यादा परेशानी कल्लू और रशीद को हो गई थी । उन्हे अंदाज नही था कि उनकी जरा सी भूल सारे वातावरण को तनावग्रस्त और भयाक्रान्त बना देगी । जेल म छूटने के बाद स ही रोटी की समस्या उनके लिये खडी हो गई थी । दगे के कारण उनकी छुटपुट चोरिया भी छूट ही गई थी । उन्हे डर था कि कहीं पुलिस उन्हें फिर न धर दबोचे तब की स्थिति मे । पूरी की होटल का बिल भी चढता जा रहा था । कल्लू ने रशीद को सुझाव दिया—"यदि चोरी के माल का उपभोग करना है तो बेहतर यही है कि हम

पुलिस थाने जाकर अपनी स्थिति बता दें। नहीं तो किसी भी दिन पुलिस हमें घर में पकड़ लेगी और फिर क्या होगा भगवान जाने। अरे पकड़ना-वकड़ना तो चलता ही रहता है लेकिन इस दंगे से तो अपना कोई वास्ता ही नहीं रहा है। वो तो साले रम्मू और कादिर बड़े ही घाघ हैं। मौका देखकर कुछ भी करा सकते हैं। क्या हम गधे हैं जो उनकी स्कीम पता न कर सकें। मेरा तो ख्याल है कि दरोगा को जाकर बता दें कि हमें बन्द कर दो। पता नहीं कब क्या हो और हम खामोखा मारे जायं।"

'तू तो यार कल्लू हमेशा उल्टा ही सोचता है। क्या पुलिस बेवकूफ है जो हम जैसे टुटपुंजिया पर हाथ डालेगी।'

'हाथ तो नहीं डालेगी। लेकिन भया जैसा दंगे का कोई उसूल नहीं होता है वैसे ही दंगे में पुलिस का कोई उसूल नहीं होता है। मेरा तो सोच है कि पुलिस को अपनी स्थिति बता दें जिससे कम से कम बचे तो रहेंगे।"

"जैसी तेरी मर्जी, चल।"

पुलिस को पता था कि कल्लू और रशीद जैसे छोटे चोर दंगे जैसी स्थिति पैदा नहीं कर सकते। उन्हें सुबह शाम हाजिरी भर लगाने के लिये बोल दिया गया। वे बेहद खुश हो गये।

*   *   *

कब्रिस्तान पर लगा पहरा भी ढीला कर दिया गया था। मात्र एक या दो पुलिस वाले अधिकतर से बैठ समय व्यतीत करते रहते थे। मृतक की कब्र पुनः भर दी गई थी। कल्लू और रशीद रोज कब्रिस्तान का चक्कर पुलिस की नजर बचाकर लगा लिया करते थे। वे मौके की तलाश में थे कि किसी भी तरह जेवर उठा लिये जाएं। दंगे की घटना ने पारस जी पायल वालों के यहां हुई चोरी की घटना को छुद्र बना दिया था।

एक बार जब वे शाम के झुरमुटे में कब्रिस्तान का मुआइना करके निकले तो उन्होंने सामने पहिचान का दरोगा निकलते देखा। चोर भागने की कोशिश करने लगे। लेकिन लिया। उसने वहीं से आवाज लगाई—

देखकर मुह छिपा रहा है। अरे नमस्ते तो कर लिया कर।" कल्लू और रशीद दरोगा के पास पहुँच गये। रशीद बोला, "दरोगा जी हम आपको यहा देख ही नही पाये। नही तो सलाम न करें ऐसी गुस्ताखी हम कैसे कर सकते हैं।"

"दरोगा जी, आप यहाँ क्या कर रहे हैं ?" कल्लू ने धीरे से पूछा।

"अरे क्या बताये। दगा क्या हो गया हमारी तो मौत ही आ गई। सुबह से शाम तक पुलिस क्या करे। अरे आजकल को तो पैदाइश ही साली हरामी पैदा हो रही है। पुलिस वाले कहां तक सुधारें सबको। अरे और तुम लोग यहा पर किसलिये आये हो।"

"ऐसे ही घूमने निकल आये थे ?"

"बनाओ मत। कबरिस्तान कोई घूमने का जगह नहीं होती है। और फिर तुम जैसे लोग घूमने निकलोगे ?"

"यदि आप जानना ही चाहते हैं तो सच यह है कि पारेख जी पायल वाला के यहा हुइ चोरी का सम्बन्ध इस कबरिस्तान मे जरूर है। पता नहीं क्यो मन कहता है कि चोरी का माल यहीं कहीं छिपा रखा हुआ है।"

"दगे के कारण चोरी की चर्चा कैसे रफूचक्कर हो गई। और भगवान जाने किस मुऐ ने चोरी की है कि पता ही नही लग पा रहा है।" दरोगा ने अपना मत व्यक्त किया।

"अच्छा दरोगा जी हम लोग चले।" कल्लू ने कहा।

तुम लोग आजकल क्या कर रहे हो ?"

"काम की तलाश मे हैं।"

"अच्छा जाओ अब चोरी-ओरी मे मत फँसना।"

जैसे ही कल्लू और रशीद जाने के लिय मुड़, दरोगा ने यहा-वहाँ देखा और फिर धीरे से कहा— "क्यों बे कल्लू डबल आ ? तुझे शक है कि माल यहीं-कहीं छिपा है ?"

"दरोगा जी, ये तो मात्र शक है। पक्का थोड़े ही कह सकता हूँ।"

"अच्छा तुम लोग माल ढूढ सकते हो ?"

"कोशिश कर सकते हैं।"

"तो निकालो ढूंढ कर।"

"मालिक माल ढूंढा और आपने कहीं धर दबोचा तो।"

"अरे तू तो निरा बेवकूफ है। दंगे में होन्हल्ले में पारख जी की फिक्र किसे।"

"माल मिलने पर हमें क्या मिलेगा दरोगा जी। आप तो देख ही रहे हैं कि हम बेकार हैं।"

"आधा-आधा ईमानदारी से बांट लेंगे।"

कल्लू और रशीद ने एक दूसरे को ओर देखा और कब्रिस्तान में माल ढूंढने घुस गये। दरोगा ने यहां-वहां देखकर पहरे पर मुस्तैदी बढ़ा दी।

स्लम हाउस

नजूल म काम करते-करत शम्भूनाथ को अरसा गुजर गया था लेकिन दुनियादारी वे नही सीख पाये थे। जबकि नजूल का दूसरा नाम ही दुनियादारी है। ईमानदारी और नजूल विभाग म उतना ही अन्तर है जितना कि ईश्वर और कमकाडी भक्त म। शम्भूनाथ भक्त तो अवश्य थे लेकिन अपने काम और ईमानदारी क। मुह अधेरे ही उठकर स्नान-ध्यान किया और फिर भिड गये आफिस स लाई फाइलो के पेंडिग काम मे। उनक परिजन शम्भूनाथ की आदतो से परिचित थे लेकिन व भी यदा-कदा उनकी आदतो मे परेशान हो उठत थे। शम्भूनाथ के विभागीय सहयोगियो ने थोड ही समय मे गगनचुम्बी इमारतो का निर्माण करा लिया था लेकिन शम्भूनाथ उन इमारतो की छाया तक भी नही पहुँच पाये थे। न जाने कितने अफसर आय, कितनो का कितना धन कमाकर दिया लेकिन शम्भूनाथ अछूते ही रह गये लक्ष्मीकृपा स। ऐसी बात नही थी कि वे धन कमाने की कल्पना नही करते थ। कई बार आत्मा को दबोचा भी सहयोगियो और अफसरो के इशारो पर, लेकिन पारिवारिक संस्कार हमशा आड आ गये और फिर उन्ह फूटाताल के उस दो कमरिये वाले तथाकथित मकान म सिमटकर रह जाना पडा। पत्नी न कई बार दुनियादारी का दशन समझाया लेकिन बाद म वह भी मान गयी रूखी सूखी तन्खा मे गुजारा करना सीख गई। बच्चे बडे हो रहे थे। यह तो इश्वर का शुक्र था कि बच्चे पढन मे होशियार थे। पत्नी इसी मे खुश थी और समझौतावादी बन गई थी। लेकिन शम्भूनाथ महसूस करने लगे थे कि बच्चो म भी हीनता की भावना प्रस्फुटित होने लगी है। लेकिन व मजबूर थ अपनी आदतो से।

बडा लडका सुमित काफी सवेदनशील था। समझदारी उसम आ गई थी— दुनिया को समझने की। फूटाताल का वह दो कमरा वाला मकान, सामने स बहती नाली जिसमे सुबह ही सुबह भारतीय माताय बच्चो का मैला प्रवाहित कर देती, शाम से ही शुरू हुई मच्छरो की भिनभिनाहट और चतुर्दिक कारपो-

~मन की समझदारी में सदा बिसरा रहने वाला कबड़ा सुमित सह नहीं पाता था।

जब तक वह नादान था तब तक इन सबको नियति मानकर समझौता कर लिया था लेकिन समझ का दसवीं क्लास की दहलीज के साथ साथ जैसे-जैसे बढ़ा उसने अपने पिता के सामने अंत व्यथा को स्पष्ट करना शीघ्र किया था। उसने कई बार शम्भूनाथ ■ बोला था कि सरकारी क्वार्टर में चल जायें। लेकिन शम्भूनाथ थे कि मकान का मोह ही नहीं छोड़ पाते थे। जब भी मकान बदलने की सोचते, मकान में बीता अतीत भूत के समान चिपक जाता। मकान बदलने की कल्पना से ही बीता बचपन उजागर हो उठता और शी मन उसकी स्मृति पटल पर उभर आता अपने पिता के द्वारा पढ़ाया जाने वाला पहली का पाठ एक बीज के भीतर गुपचुप मिट्टी की तह में कुछ नीचे छिपा हुआ था नन्हा पौधा- ' याद कराया करते थे। शम्भूनाथ के पिता की असमय मौत ने उनको तोड़ दिया था लेकिन मिट्टी की तह में छिपे बीज के समान वे तब भी पनप गये—सीमित दायरों में। लेकिन उचित खाद-पानी के अभाव में वह पौधा पीताम्बरी होकर ही जीवित रह पाया था। मिट्टी का मोह बड़ा बलशाली होता है। उससे जुड़ी बीते समय की स्मृतियाँ ही व्यक्ति को भावी जीवन का आधार प्रदान करती हैं, उसे जीवित बनाती हैं। सभी लोग तो धीरे-धीरे बिखर जाते हैं इस दुनिया में लेकिन वे स्मृतियाँ तब भी उसे बिखराव के मोड़ पर उसे जीने का आधार प्रदान करती हैं। बच्चों के अनुरोध पर शम्भूनाथ जब भी मनन करते स्वयं को मकान से और भी जुड़ा पाते।

*　　*　　*

समय गुजरा और बुढ़ापे की सफेदी शम्भूनाथ की कनपटी पर दस्तक देने लगी। सुमित कालेज में पहुँच गया था-इंजीनियरिंग पढ़ने। बेटी रेखा गुड्डा-गुड्डी, रस्सी और गुट्टा खेलते-खेलते जवानी में पदार्पण करने लगी थी। सबसे छोटा विशाल स्कूल में पढ़ने के बाद भी पतंगबाजी और गुल्ली-डण्डे में अपनी दिलचस्पी बनाये रखा था। पैसे की तंगी अब भी बरकरार थी। सब लोग एक सिमटी जिंदगी जी रहे थे—सुनहरे भविष्य की आशा में। अभाव जीवन का

आवश्यक अंग बन गया था लेकिन अनुशासित आदतों के दायरे में वह भी अपनी अहमियत खोने लगा था।

ऐसे ही समय शम्भूनाथ के जीवन में एक धमाका हुआ। सिन्हा नाम का एक धाकड़ अफसर शम्भूनाथ के जीवन में आया। शम्भूनाथ की ईमानदारी और कर्त्तव्य भावना से वह बहुत प्रभावित हुआ था। उसे विश्वास ही नहीं हुआ था कि शम्भूनाथ जैसा व्यक्ति भी नजूल में इतने वर्षों तक काम करते-करते विभागीय क्लर्क से अछूता रह गया है। वैसे सिन्हा ईमानदार नहीं था लेकिन था बड़ा जीवट और दुनियादार।

एक व्यापारी का जमीन का केस फंसा सिन्हा की अदालत में। कर्ता-धर्ता शम्भूनाथ ही था। उसकी जगह कोई और होता तो हजारों का सौदा आनन-फानन हो जाता। सिन्हा व्यापारी की नियत को ताड़ गया था। चैम्बर में बुलाकर पता नहीं उस व्यापारी से उसने क्या बोला कि वह शम्भूनाथ के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। शम्भूनाथ मतलब नहीं समझ पाये। व्यापारी को समझ में नहीं आ रहा था कि शम्भूनाथ से कैसे बातचीत करे। शम्भूनाथ के ही पूछने पर वह बोला-"बाबूजी! मेरी कुछ जमीन शहर की पाश कॉलोनी पचपेढ़ी में है। चाहता हूँ कि बिक जाय।"

शम्भूनाथ निर्विकार रूप से बोले— 'तो बेच दो। इसमें मुझे बताने की क्या बात है।"

"साहब चाहते हैं कि जमीन आप खरीद लें।"

'क्या कहा? मैं खरीद लूं? कैसे सोच लिया तुमने कि पांच सौ रुपया का शम्भूनाथ शहर की पोश कॉलोनी में सौ रुपये फीट की जमीन खरीद लेगा। मेरे बारे में सब कुछ जानते हुये भी तुम्हें ऐसी बात नहीं करना चाहिये।"

'भाव की बात छोड़िये। जिस भाव आप चाहेंगे आपको बेच दूँगा।'

"यह नहीं हो सकता। शम्भूनाथ बिक नहीं सकता।"

व्यापारी सुनकर भौंचक्का रह गया। उसकी समझ में नहीं आया कि क्या करे। वह साहब के चैम्बर में गया और स्थिति से अवगत कराकर चला गया।

* * *

सिन्हा उस ओवट शम्भूनाथ पर मन ही मन खौलता उठे लेकिन शम्भूनाथ का दर्जा उनकी नजरों में और भी बढ़ गया था। उसने शम्भूनाथ को चेम्बर में बुलाया और कहा—

"शम्भूनाथ! माना कि तुम एक निहायत ईमानदार आदमी हो लेकिन एक चना भाड़ नहीं भून सकता। जैसा समाज चल रहा है चलोगे तो सभी सम्मान देंगे। अन्यथा दूध में गिरी मक्खी के समान निकालकर यह सारा समाज उस दूध को भी सपोट लेगा और तुम्हारी ईमानदारी पर ठेंगा भी बतलावेगा। मैं नहीं कहता कि बेइमान बनो लेकिन कानूनन जो हो सकता है वो तो कर सकते हो। उस व्यापारी की जमीन खरीदने में क्या आपत्ति है तुमको। घूस तो नहीं दे रहा है। मेरे कहने पर थोड़ा फेवर ही तो कर रहा है। कितने बच्चे हैं तुम्हारे?"

शम्भूनाथ की घर की परिस्थिति सुनकर सिन्हा फिर बोला—

"माना कि बच्चे होशियार हैं लेकिन लड़की की शादी में तो खर्चा लगेगा। कहाँ से लाओगे पैसा बताओ। फण्ड है ही कितना तुम्हारा। खत्म कर दिया तो क्या करोगे बुढ़ापे में। और फिर इस कितने लोग हैं हमारे इस दकियानूस समाज में जो चरित्र और गुणों से तुम्हारी कीमत आंकेंगे। और तुम्हारी बच्ची का हाथ स्वयमेव मांग लेंगे। बहती गंगा में हाथ धोना सीखो। नहीं तो हाथों में लगा चरित्र का कीचड़ दुख के सिवाय कुछ भी न देगा। जितना ही यह कीचड़ सूखेगा दुख की जकड़न और भी बढ़ जावेगी। समझ रहे हो न। फिर मत कहना कि ढङ्ग का कोई अवसर नहीं मिला। सिन्हा के रहते कुछ जमीन-जायदाद बना लो। ऐसा अवसर फिर नहीं मिलेगा भविष्य में।"

शम्भूनाथ सिन्हा के दर्शन से विचलित तो नहीं हुआ लेकिन सिन्हा के दर्शन में उसे यथार्थ जरूर नजर आया। उसने कुछ सोचा और बोला—

"सर, आपकी बात मान भी ली जाये तो जमीन खरीदने के लिये पैसा कहाँ से आयेगा। और फिर जमीन खरीदने से क्या होगा। मकान बनवाना कितना दुष्कर है आजकल।'

सिंहा मंद-मंद मुस्कराते हुए बोला—

' लोन के लिए एप्लाई कर दो । सब कुछ हो जायेगा । जो व्यापारी तुम्हें जमीन बेचेगा वह ही तुम्हारा मकान भी बनवायेगा—लोन के ही पैसे में । उससे ज्यादा पैसा तुम्हें खर्च नहीं करना होगा ।"

शम्भूनाथ चुप हो गया और चुपचाप जाकर अपनी सीट पर बैठ गया ।

* * *

सुबुद्धि कहिए या कुबुद्धि, शम्भूनाथ ने पारिवारिक सदस्यों की इच्छा को सर्वोपरि मानकर जमीन खरीद ली और भवन-निर्माण का सिलसिला चालू हो गया । पत्नी-बच्चे सभी खुश थे कि नरक से निकलकर खुली हवा में सांस लेने का एक अवसर तो उनकी किस्मत में आया । अभिजात्य वर्ग की उस कालोनी में जहाँ बंगले के चतुर्दिक बनी चहार-दीवारियाँ अभिजात्य मानसिकता का प्रतीक थी, शम्भूनाथ का मकान मखमल में पैबंद के समान था । मितव्ययता का ध्यान रखकर परिवार के सभी लोगों ने शारीरिक श्रम के माध्यम से उस खप-रैलची मकान में अपना खून-पसीना सींचा था । गारे की तगाड़िया उठाई थी, मिस्त्री की अनुपस्थिति में मकान में पानी सींचा था और फर्श की कुटाई की थी । कॉटेजनुमा उस मकान में शम्भूनाथ का भविष्य सुरक्षित हो गया था । लेकिन शम्भूनाथ ने महसूस किया था कि मकान-निर्माण की प्रक्रिया के दौरान लोगों की निगाहें एक विचित्र से संदेह से उसे निहारती रहती थी । शायद वे सब एक बाबू का उस कालोनी में रहना पसंद नहीं कर पाये थे । उन सबकी निगाहों को देखकर उसे लगता कि सब कह रहे हों—"कहो मिस्टर शम्भूनाथ । एक बाबू इतनी महँगी जमीन कैसे खरीद पाया । आखिर भाई नजूल का ही तो बाबू है । हा-हा-हा " शम्भूनाथ को अंदर ही अंदर लगता कि वह उस परिवेश में कभी आत्मसात नहीं हो पायेगा । उस वर्ग की टीमटाम, आडंबर फैशन आदि के लिये कहाँ से पैसा लायेगा वह । एकबारगी उसने सोचा भी था कि मकान बनने के बाद उसे किराये पर उठा देगा लेकिन फिर परिवार की याद आ जाती जो उस मकान से कहीं ज्यादा जुड़ा महसूस करने लगे थे । मकान-

निर्माण के दौरान ही उसके पास कई लोग आये भी थे मकान किराये पर लेने के लिये। पाच-छः सौ का ऑफर भी दिया था लेकिन वह चुप रह गया था। घर मे बात भी की थी उसने मकान को किराये पर उठाने की लेकिन सबने उसका पुरजोर विरोध किया था। सुमित की आखो की चमक तो क्षण भर मे द्युतिविहीन हो गई थी। परिवार की खातिर शम्भूनाथ ने उस दमरैलची काटेज मे रहने का फैसला कर लिया।

*　　　*　　　*

मकान के गृह-प्रवेश समारोह मे सिन्हा भी आये थे लेकिन शम्भूनाथ उनसे नजरें मिलाने का साहस नहीं बटोर पा रहा था। काटेज के मुख्य द्वार पर करीने से लिखा "आशीर्वाद" सजाया गया था। सिन्हा ने शम्भूनाथ की पीठ थपथपाई। शम्भूनाथ को ऐसा लगा था कि आशीर्वाद सिन्हा के प्रयासो का ही प्रतिफल है। कालोनी के काफी लोग आमन्त्रित थे। करीब-करीब सभी आये थे—शायद इसलिये कि भविष्य मे शम्भूनाथ से बनाये सम्बन्धो का दर-सबर भुनाया जा सके। शम्भुनाथ के परिवार ने सोचा कि कितने अच्छे लोग हैं जो वे उनके इस लघु समारोह मे शुभकामनाये देने आये हैं। लेकिन सिर्फ शम्भूनाथ ही सही सोच पा रहा था। वह ईमानदार जरूर था लेकिन बुद्धू नही। दुनियादारी को नजदीक से देखकर लोगो को समझने की अपरिचित क्षमता उसने पैदा कर ली थी। सिन्हा ने शम्भूनाथ को शुभकामनाये दी और फिर सब औपचारिकता निभाकर अपने-अपने घर चले गये।

*　　　*　　　*

शम्भूनाथ का सम्पूर्ण परिवार 'आशीर्वाद' मे जाकर खुश हो गया। लेकिन शम्भूनाथ ने अपना पुस्तैनी किराये वाला मकान अभी भी नही छोड़ा था। उसमें ताला लगा दिया था और तंग जब होने के बावजूद भी शम्भूनाथ उसका किराया भरता आ रहा था। सबने कहा था कि मकान छोड़ दिया जाये लेकिन शम्भूनाथ निर्विकार ही रहा था। 'आशीर्वाद' मे कुछ समय बिताने के बाद सबने महसूस किया था कि वे एक सुन्दर महल मे कैदी की जिन्दगी जी रहे हैं। शम्भूनाथ की पत्नी घर मे ही सिमटकर रह गई थी। सारे प्रयासों के बावजूद भी वह

अभिजात्य वर्ग की महिलाओं से जुड़ नहीं पाई थी। उसे लगने लगा था कि फूटाताल के मच्छर भरे उस दो कमरिये मकान में वह कहीं ज्यादा स्वतन्त्र थी। आस-पास (पड़ोस) की महिलाओं का निर्मल निस्वार्थ व्यवहार उसे रह-रहकर याद आता रहता था। दोपहर का समय काटना उसके लिये दूभर हो गया था। कालोनी की महिलाओं का बेतरतीब जीवन और स्टेटस की बातें उसे रास नहीं आई थीं। उसने भी शम्भूनाथ की दिशा में सोचना प्रारम्भ कर दिया था। लेकिन वह अपना निर्णय नहीं बताना चाहती थी। कारण कि अन्दर ही अन्दर वह स्वयं को भी इस स्थिति के लिये दोषी मानती थी।

सुमित महसूस करने लगा था कि वह कट गया है। कालोनी के युवाओं में उसका तालमेल नहीं बैठ पाया था। उन सबकी मानसिकता को स्वीकार करने का साहस उसमें नहीं था। रोज-रोज पेरीमेसन सेस, रावित्स के पात्रों और उपन्यासों की चर्चा पियानिस्टों से जुड़े कालोनी—युवाकुमारों का भ्रम और जीन-संस्कृति के अंधानुकरण से उसे लगने लगा था कि वह एक निराशावादी दर्शन विहीन खोखले समाज में जी रहा है। विशाल की पतंगबाजी और गिल्ली-डंडा यहाँ पर विलुप्त हो गये थे। इनकी चर्चा ही उस समाज में निचले स्तर का मापदण्ड मानी जाती थी। उसका शैशव मन कभी नहीं समझ पाया था कि क्रिकेट और वीडियो की ही चर्चा वहां पर हमेशा क्यों होती रहती है। तरतीब से पहिने कपड़े और उस पर सुसज्जित टाइ पहिने लड़कों को जब वह स्कूल जाते देखता तो पाता कि उसका पटेहाल स्कूल जाना कितना अशोभनीय है। बातों ही बातों में वहाँ के हम उम्र बच्चे दुनिया के बारे में उसके अल्पज्ञान का मखौल उड़ाते। विशाल का चंचल व्यवहार पलायनवादी होकर कॉटेज के अंदर सिमट गया था। वह निकन की कल्पना मात्र से शरीर के अन्दर विचित्र सी सिहरन महसूस करता। पट-पट बातें करने वाला विशाल इतना परिवर्तित हो गया था कि शम्भूनाथ और उसकी पत्नी को भी रंज हुआ था। विशाल अब किसी वस्तु की मांग नहीं करता था और पहली तारीख का इंतजार नहीं करवाता था। और रेखा जो पहले ही घर में सिमटी सी थी अब और सिमटकर कुंठाग्रस्त हो गई थी। उसकी सारी दुनिया चूल्हे-चौके, मां और पढ़ाई तक

सीमित हो गई था। उसके चेहरे के अन्दर तेज में उदासी घुल गई थी। आंखों के भावों ने कहानी कहना बंद कर दिया था।

सबने महसूस किया था कि व कुछ ऐसा खो जा रहे हैं जिसकी आपूर्ति शायद ही सम्भव हो। लेकिन किसी को भी हिम्मत शम्भूनाथ से फूटावाल वाले मशाल में वाणिश चलन को कहने की नहीं होती। यदि कोई अविचलित था तो सिर्फ शम्भूनाथ जो हर घटना को पैनी नजर देखकर भी शान्तभाव में अपने काम में मगन था।

उससे बड़ी बात तो उस समय हुई थी जब विशाल बीमार पड़ गया था और शम्भूनाथ भागता-भागता सिविल सर्जन के बंगले में गया था। सिविल सर्जन कहीं पार्टी में जाने के लिये तैयार थे। उन्होंने उसके घर जाने में असमर्थता व्यक्त की थी और अस्पताल के इमरजेंसी वार्ड में जाने की सलाह दी थी। शम्भूनाथ कटकर रह गया था। उसने सपने में भी सोचा नहीं था कि डाक्टर कर्त्तव्य में ज्यादा पार्टी को महत्व देगा।

गेट से बाहर निकलते-निकलते उसने सुना—

'कैसे लोग हैं बिना सोचे समझे चले आते हैं अरे मकान क्या बनवा लिया कालोनी में तीसमारखां समझने लगा है कुछ तो सोचा होता कि कहां जा रहा है पैरों की धूल फिर चढ़ कौन बरदाश्त कर सकता है। सुनकर शम्भूनाथ सन्न हो गया था। सिर्फ आंखों ने आंसुओं के रूप में उसस सहानुभूति जताई थी। घर पहुंचकर जब उसने घटना बताई तो सब ऐसे शान्त हो गये जैसे कोई मौत की खबर सुन ली हो। शम्भूनाथ आनन-फानन विशाल को रिक्शे में ढोकर फूटावाल के दो रूपये वाले डाक्टर के पास ले गया। उस डाक्टर से उसके पुश्तैनी सम्बन्ध थे। डाक्टर बोला, क्यों रे आज विशाल का इतना टूर। खबर कर देते चला आता।' शम्भूनाथ की नजरें नीचे झुक गईं।

'आशीर्वाद' काटेज शम्भूनाथ और उसके परिजनों के लिये एक अभिशाप ही साबित हुई थी। ऊंट को अपनी ऊँचाई का भान तब हुआ जब वह पहाड़ के नीचे पहुँचा। सभी अंदर ही अंदर प्रभावित थे। बिखरी मानसिकतायें अब तब

आधार पर जुड़कर समरसता पा रही थी। उस टूटन की स्थिति में सुमित हिम्मत बटोरकर बोला—'बाबू। क्यों न हम सब फूटाताल वापिस चले जायें।' सबकी आंखों में एकदम से चमक आ गई। विशाल बिस्तर पर ही लेटा लेटा बुखार में बोल पड़ा—'हां बाबू। चलियेगा न वापिस वहीं पर। टिल्लू, कल्लू, मुन्नी, केशव, सोहन से मिले कितने दिन बीत गये हैं। वे बेचारे तो यहां आ नहीं सकते लेकिन हम तो वापिस जा सकते हैं।'' ऐसा सुनते ही शम्भूनाथ की पत्नी ने विशाल के सिर पर हाथ फेरते हुये रुंआसे से स्वर में कहा 'बेटा! जरूर चलेंगे। कौन रहना चाहता है इस मानवीय समाज में गंजे इलाके में। तेरे बाबू तो पहिले ही बोले थे कि यहां नहीं रहेंगे लेकिन जिद तो हमारी ही थी न।''

रेखा चौके से बाहर आकर बातचीत में संलग्न हो गई थी। उसके हाथ अनायास ही ताक में रखी रस्सी और गुट्टों पर चले गये थे। उसने उन्हें उठाकर चूम लिया।

*   *   *

दूसरे दिन शम्भूनाथ ने सामान बांधा और सब फूटाताल के मकान में जाने के लिये तैयार हो गये। फिर अचानक शम्भूनाथ को कुछ याद आया और उसने फूटाताल जाने का कार्यक्रम एक दिन के लिये स्थगित कर दिया। शम्भूनाथ ने आफिस से छुट्टी ले ली। सब लोग शम्भूनाथ के व्यवहार पर आश्चर्यचकित थे। लेकिन कुछ समझ नहीं पा रहे थे। घंटे भर बाद सबने देखा कि शम्भूनाथ एक राजमिस्त्री के साथ वापिस आ गये हैं। शम्भूनाथ के आदेश पर राजमिस्त्री ने आशीर्वाद के चमकते अक्षरों को तोड़ दिया और फिर आंग्ल भाषा में वहीं पर लिख दिया—'स्लम हाउस'। जब पत्नी और बच्चों ने शम्भूनाथ की ओर प्रश्न की मुद्रा में देखा तो वह बोला—'इस स्लम हाउस में यह हमारी आखिरी रात होगी। फिर सब कुछ ठीक हो जायगा—प्लेट की तख्ती लगाने के बाद। पत्नी और बच्चे स्लम हाउस के प्रतीक को समझने का प्रयास करने लगे थे।

★ [यह कहानी साप्ताहिक हिन्दुस्तान द्वारा 'अभिशाप' शीर्षकांतर्गत प्रकाशित की गई थी।]

बूंद-बूंद मौत

अब इस कस्बे मे बचा ही क्या है। मशीनो की प्रगति करती तादाद ने कस्बवासियो को शन-शनै शहरो मुख कर दिया है। राहत काय के दौरान पीली मिट्टी स बनी कच्ची रोड ने गावो की शहरो की ओर दौड मे विशेष त्वरण लाकर नया अध्याय खोल दिया था। इस कारण कस्बवासियो ने कस्बे मे रहने के बाद भी अपने आसपास के परिवेश म शहरो की असत्य लेकिन अहकारी बातो को एक न पके फोडे के समान पोषित करना सीख लिया था। आखिर ग्रामीण जन किस रूप म स्वय के जीवन को परिमार्जित करें। फिर शहर तो हमेशा से आदश का लबादा ओडे हुय हैं—कम जनसख्या वाले कस्बो और गावो के लिये। गावो और कस्बो का कुटीर उद्योग ठेकेदारो के माध्यम से शहरी सेठो की गोद मे पलकर बडा होने लगा था। लेकिन जिनके पास शहर जाने के लिये धन न था, व कस्बे की अनचाही जि दगी से समझौता कर वही पर अपनी श्मशान भूमि तैयार कर रहे थे। जहाँ शहरो के श्मशान घाट शहरो की बरोक-टोक बस्ती आबादी म डरकर हर बार बाहर खिसक जाते थे, कस्बे का श्मशान घाट एक लम्बे युग के बीत जाने के बाद भी अपनी निर्धारित सीमाओ म सिकुडता ही जा रहा था। लकिन श्मशान घाटो के इस फैलाव व सिकुडन म बबवर चमरू रोज सिफ एक ही आह भरकर रह जाता था, "कि यह घाट क्यो उसकी झोपडी पर अपने डैने फैलाकर उसे अपनी आगोश म शामिल नहा करता ?"

*   *   *

चमरू व जीवित शरीर और एक मुर्दे मे फर्क ही क्या रह गया है। पैंतीस साल की उम्र होती ही क्या है लेकिन चमरू को देखकर ऐसा लगता है कि किशोरावस्था की दहलीज पर पैर रखते ही बुढापे ने उसका भरपूर स्वागत किया हागा। पिचके गाल अन्दर धसी आख पीने के सोटे मे गाल गुरुरगुर सी लम्बी और पतली टागें और बदन पर टंगे कपडा के समान कमर के नीचे

लटकती पट्टे वाली मैली-कुचैली चड्डी और उस पर पहिनी आधे बांह की बंडी—चमरू की पहिचान के मापदण्ड हैं। एक लम्बा अरसा गुजर गया जब उसने स्वच्छ धवल—कांच वाली धोती पहिनी होगी। फिर तो उसे याद ही नहीं रहा कि वह धोती कहां हवा हो गई। धोती तो उसके जीवन का पर्याय थी। धोती के हवा होते ही चमरू का जीवन और उसका सतुष्ट मुख भी हवा हो गये थे। बच गया था सिर्फ घिसटता आत्माविहीन शरीर।

*   *   *

चमरू अपनी कला में माहिर था। हाथकरघे पर काम करना तो कोई उससे सीखे। न जाने कितने थान बुनकर फेंक दिये थे उसने। लेकिन कला ही तो सब कुछ नहीं है। प्रारब्ध भी तो होना चाहिये। और फिर भाग्य और कला तो सदियों से एक दूसरे के शत्रु रहे हैं। शहरों में लगे लूमों ने गांव और कस्बों के जुलाहों की रोटी छीन ली थी। दस बारह आदमियों का काम जब एक मशीन ही कर दे, और वह भी सुघड़ता से, तो फिर कलाकारों की क्या आवश्यकता। चमरू की तरह और भी कई जुलाहे मशीनी सभ्यता का शिकार हो कलाच्युत हो गये थे। कईयों ने तो मजदूरी का काम कर लिया था, लेकिन चमरू का 'कलाकार' परिस्थितियों से समझौता न कर सका। कितने ही दिन चमरू ने लूम-मालिकों से मेल-जोल बढ़ाने के चक्कर में बिता दिये थे, लेकिन उसकी हथेलियों की गुमान बरकरार थी। मरता क्या न करता, चमरू को पुश्तैनी धंधा अपनाना पड़ा।

गांव और कस्बों में लोग बेरोजगार होते हैं तो बीड़ी बनाना ही उनका प्रमुख व्यवसाय हो जाता है। चमरू को याद है कि कैसे उसका बाप बीड़ी बनाते-बनाते राजयक्ष्मा का शिकार हो गया था। वह हमेशा चमरू से कहता था—"बेटा सब काम करना, लेकिन बीड़ी कभी न बनाना। बीड़ी पीने वाले तो कुछ लम्बी जिन्दगी बसर कर ही लेते हैं लेकिन बनाने वाला कभी नहीं।" चमरू के बाप ने पूरी जिन्दगी पट्टे वाली चड्डी और फटी बंडी में काट दी थी। लोग कहते थे कि भारत का कपड़ा बड़ा मशहूर है। बाहरी देशों में

उसकी बड़ी लपट है लेकिन उसके बाप ने पटट बाल वपट और सम्ने लकलाट के सिवा कुछ नहीं देखा था।

बीड़ी के धंधे में पनप आक्रोश ने चमरू को अच्छा जुलाहा बना दिया था। लेकिन ताने-बाने ने उसकी जिन्दगी में कोई विशेष ताना बाना नहीं बुना था। वैसे कपड़े की बुनाई का काम भी उसे हमेशा नहीं मिलता था और खाली समय उसके पास काफी रहता था, लेकिन बीड़ी बनाने का स्वप्न उसने कभी नहीं संजोया था। जब लोग उसे खाली समय में बीड़ी बनाने की सलाह देते, तो खा जाने वाली नजरों से वह उनका सामना करता। जुलाहे के धंधे की कमाई ने उसकी पारिवारिक फसल में काफी वृद्धि कर दी थी। शादी के आठ साल बाद ही वह पांच बच्चों का बाप बन गया था। लेकिन उसकी पत्नी इन बच्चों के जनन का भार न संभाल पाई थी। उसकी सारी जवानी क्षण मात्र में निचुड़ गई थी। शायद इसीलिए ही विद्वानों ने जवानी को क्षण-भंगुर आवेश का रूप बताया है।

*　　　　*　　　　*

मन की सारी इच्छाओं का दमन करके यद्यपि उसने बीड़ी बनाना चालू कर दिया था लेकिन उसके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आया था। बल्कि उल्टा हुआ यह कि पेट की अग्नि शांत करने के लिए सारा परिवार बीड़ी बनाने लग गया। बच्चों का स्कूल जाना धीरे-धीरे कम हो गया और फिर एक दिन छूट गया। चौपाल में शाम-सुबह चलने वाले उसके चर्चे घर में सिमट कर रह गये थे। जीवन की खुशबू तेंदू पत्तों की गंदी बदबू और कचरे में समा गई थी। पूरा घर मिलकर सप्ताह में करीब पंद्रह हजार बीड़ियां बना पाता था। चमरू ने सुना था कि सरकार ने बीड़ी मजदूरों की रोजी बढ़ा दी है, लेकिन उसे ऐसा कभी महसूस नहीं हुआ था। पंद्रह हजार बीड़ियों का मतलब है सरकारी रेट के मुताबिक करीब 95 रु० का मेहनताना। लेकिन उसे कभी 55-60 रु० से ज्यादा इन बीड़ियों के लिये नहीं मिला था। पत्ते की कटाई और तम्बाकू की कम तौल और ठेकेदारों की बाना में मेहनताना करीब चालीस प्रतिशत कट जाता था।

यदि बीड़ी बनाने का काम भी हर सप्ताह नियमितता से मिल जाये, तो दो

जून की रोटी तो निकल ही सकती थी। लेकिन ठेकेदारों और कट्टेदारों के कारण यह भी संभव नहीं था। वे हमेशा एक "स्पेशल फेवर" चाहते थे, लेकिन चमरू क्या फेवर दे सकता था। शरीर पर पहने कपड़ों को छोड़कर उसके पास था ही क्या। लेकिन समाज नंगा आदमी भी तो नहीं चाहता— खुले रूप में। नंगा आदमी तो सिर्फ अँधेरों में ही फेवर दे सकता है।

*　　　　*　　　　*

इस सप्ताह चमरू और उसके परिवार ने रात दिन एक करके बीस हजार बीड़ियाँ बनाई थी। चमरू ने सोचा था कि कुछ ज्यादा पैसा मिल जायगा तो वह बच्चों और बीवी के अधनंगे शरीर तो कम से कम ढक सकेगा। उसका कट्टेदार घनश्याम वैसे तो बड़ा भला आदमी है, लेकिन आदमी देखकर पैसा देता है। फुटपाथ पर बसर करने वाला घनश्याम सेठों की मदद से कट्टेदार बन गया था। थोड़े से समय में उसने काफी पैसा कमा लिया था।

पैसे के आते ही उसकी काया कल्प हो गई थी। बालों में चीकट सा तेल उतरने लगा था और कुर्ते में गले के पीछे लाल छींट का एक बड़ा रूमाल बंध गया था। कस्बे का वह अन्नदाता बन गया था, इसलिये लोग उसकी शरारतों को नजर अंदाज कर देते थे। उसमें पिछड़ने का तात्पर्य था—कम मिलने वाले मेहनताने में भी हाथ धोना।

बीड़ियाँ लेकर चमरू घनश्याम के कट्टे पर गया। घनश्याम उसे देखकर बड़ा प्रसन्न हो गया। उसे पास बैठाकर बोला—

"क्यों चमरू भया, सब ठीक-ठाक तो चल रहा है ना ?"

"मालिक ! आपकी दया है।" चमरू धीरे से बोला।

"बीड़ी बना लाये ?"

"हाँ। इस बार कुछ ज्यादा ही बनाई हैं। सोचा आपकी दया से पुराना पैसा और इनका पैसा मिल जाय, तो बच्चों के कपड़े बन जायें।"

"सो तो है ही। घनश्याम आखिर तुम सबकी सहायता नहीं करेगा, तो फिर पैसा कैसे कमायेगा।" चमरू चुप रहा।

"कितनी बीड़ी बना लाये ?" घनश्याम ने पूछा।

"बीस हजार।" चमरू बोला।

'बीस हजार! लेकिन सब ठीक तो बनी है न। इतनी बीडियां तो तुमने कभी नहीं बनाईं—सप्ताह भर में।" घनश्याम ने आश्चर्य से कहा।

"मालिक सिर्फ दो घंटे ही दिन भर में सो पाये हैं। दिन रात इसी आस से बीडी बनाते रहे कि थोड़ा ज्यादा पैसा कमा लिया जाये।" चमरू ने स्पष्टीकरण दिया।

देखें तुम्हारी बीडियां ?"

चमरू ने टोकरी सामने रख दी। घनश्याम ने मुआइना करते हुये कहा—

चमरू इसमें से तो आधी बीडियां ठीक नहीं हैं।"

नहीं मालिक, बीडियां तो सब ठीक हैं।"

'नहीं भाई, तुम नहीं समझ सकते। शहर में सेठों के पास जब कट्टे ले जाओ, तो इन बीडियों को देखकर नाक-भौं सिकोड़ते हैं। कहते हैं—'लोग बड़े काहिल हो गये हैं। बीड़ी तक ठीक से नहीं बना पाते। आधी बीडियां तो रिजेक्ट कर देते हैं। करीब आधी बीडियां का ही तो पैसा मिलता है। जितना मिलता है मैं सब तुम लोगों को दे देता हूं।"

'लेकिन मालिक, एक बात बोलूं, यदि आप नाराज न होवें तो ?"

'हां, हां, बोलो।

'मालिक सुना है रिजेक्ट बीडियां भी कट्टों में भरवा दी जाती हैं। और वे सब कट्टे बाजार में बिक जाते हैं। बस हमारी ही मेहनत हमें नहीं मिलती।"

"राज की बात तो मैं नहीं जानता, लेकिन जितना ज्यादा से ज्यादा पैसा मैं लाता हूं, तुम सब लोगों को निखालिस दे देता हूं।"

चमरू चुप रहा। उसे पता था बहस पर संतोष का पेड़ नहीं पनपता।

फिर धीरे से निराशा जनक स्वर में बोला—

तो मालिक ये बीडियां गिन लीजिये। पिछले तीन हफ्ते और इस हफ्ते का हिसाब कर दें। अब घर में कुछ नहीं बचा है।"

"बीडियां तो हम गिन लेते हैं लेकिन पैसा अभी नहीं मिल पायेगा। सेठों ने पैसा दिया ही नहीं।" घनश्याम ने समझाने वाले स्वर में कहा।

"फिर मालिक खर्चा कैसे चलेगा हमारा ? रोज कुआं खोदते हैं और रोज पानी पीते हैं। फिर बीडी बनाने का फायदा ही क्या ?"

"तो फिर मत बनाओ बीडी। कौन सा मैंने तुमको बुलाया था। तुम्ही तो आये थे मेरे पास काम की फरमाइश लेकर। अपना आदमी समझकर मैंने तुम्हें काम दिया था। अब तुम्हारी मर्जी ?"

चमरू सुनकर चुप रह गया। सत्य तो था—कौन घनश्याम उसे बुलाने गया था। वह तो स्वयं उसके पास गिड़गिड़ाते आया था। परेशान सा हो चमरू जमीन कुरेदना लगा। घनश्याम चालाक था। धीरे से चमरू की पीठ पर हाथ फेरते हुये बोला—

"भैया चमरू क्या घनश्याम मर गया है ? तुम्ही से तो पैसा कमाता हूँ। पैसे की जरूरत हो, तो मुझसे सौ-पचास रुपया ले लो। कौन सा ज्यादा ब्याज लेता हूँ मैं। सौ रुपये पर सिर्फ पांच रुपया महीना। बताओ इस दुनिया में इन्सान-इन्सान के काम न आय, तो क्या फायदा जिन्दगी का। छी-छी कैसा घोर कलजुग आ गया है।"

चमरू फिर भी चुप रहा। गोबर से लिपे फर्श में थोड़ा गड्ढा हो गया था। फिर साहस जुटाकर वह बोला—

"मालिक दे ही दो सौ रुपये। हिसाब में से काट लेना। बच्चों के साथ आखिर कब तक अन्याय करूँ।"

"हां, हां क्यों नहीं। आखिर तुम्हारे लोगों का ही तो सेवक हूँ।" ऐसा कहकर घनश्याम ने बंडी की भीतरी जेब से नोटों की गड्डी निकाली और उसे गिनकर चमरू से बोला—"ये लो पचानवे रुपये रुपये रुपये । पांच रुपये इस महीने का ब्याज काट लिया है। ठीक है न। गिन लो-गिन लो।"

चमरू ने चुपचाप पैसे लेकर बंडी की जेब में डाल दिये। घनश्याम ने उसकी तरफ देखकर पूछा—

"चमरू अब तो तुम्हारे बच्चे भी बड़े हो गये होंगे ?"

"हां, काफी बड़े हो गये है।" चमरू ने निराशा में उत्तर दिया।

और मुनिया कितने साल की हो गई है ?"

"ले कुत्ते ! उठा ले अपने पैसे। और मत कर मेरा हिसाब। उसे भी उतार जा।"

घनश्याम टुकुर टुकुर चमरू को देख रहा था। चमरू ने जैसे ही चलने के लिये पग आगे बढ़ाया, उसे झोपड़ी में खाट ओढ़ती पत्नी और पांच बच्चों की आशान्वित आंखें घूरने लगीं। उसने ही उन सबकी नींद हराम कर दी थी—ज्यादा बीड़ियां बनवा बनवाकर। ज्यादा पैसे और कपड़ा का लालच भी तो उसने ही उन्हें दिया था। कहां से खिलायेगा उन्हें रोटी और कहां से आयेगा उनका कपड़ा। चमरू जुलाहे को अपने कलावार हाथ कटे-नजर आने लगे थे।

अब तो वह समय आ गया था कि पेट आते ही खांसने लगा था। क्या बचा है उन सबके शरीरों में। सोचने-सोचने उसका मस्तिष्क विक्षिप्त सा होने लगा। फिर धीरे से वह पीछे मुड़ा। घनश्याम अभी भी उसकी तरफ देख रहा था। नोट अब भी जमीन पर पड़े यहां-वहां उड़ने का प्रयास कर रहे थे। चमरू धीरे से बोला—

"घनश्याम मालिक, माफ करना। क्रोध में आ गया था।"

और इतना कहकर वह फर्श पर पड़े नोट बीनने लगा। नोट बीनकर जब वह चलने लगा, तो घनश्याम धीरे से बोल उठा—

"क्रोध नहीं करना चाहिए। मैं तो तुम्हारी हालत से परिचित हूँ। इसीलिए तुम्हारी सहायता की थी। मुझे तुम्हारे क्रोध का बिल्कुल भी बुरा नहीं लगा। जाओ, जाओ—घर में बच्चे राह देख रहे होंगे।"

चमरू धीरे से निःशब्द आगे बढ़ गया। घनश्याम के चेहरे पर एक कुटिल मुस्कान तैर गई।

कटा हुआ आदमी

एक लम्बा अरसा गुजर गया है शिवनारायण को गाँव से आकर शहर में बसे हुए। जिन्होंने भी शिवनारायण को ग्रामीण परिवेश में देखा और परखा था, उनका मत भी अब शिवनारायण के बारे में बदल गया है। क्या दबंग व्यक्तित्व था गाँव में उनका। पेशे से वे एक मिडिल स्कूल के शिक्षक थे और आंग्ल भाषा पर उनका अच्छा-खासा प्रभाव था। ग्रामीण और कस्बाई विद्यार्थियों को उन्होंने सिर्फ आंग्ल भाषा का ही विद्यादान दिया था। उनके पढ़ाये विद्यार्थी की क्या मजाल कि वह गलत भाषा बोल दे और लिख दे। भाषा गलत क्या हुई शिवनारायण की छड़ी से गति आई। विद्यार्थी उस समय उनके मार की चाहे जितनी भी निंदा क्यों न करते हों आज उनकी नजर में शिवनारायण के लिये असीमित स्नेह और श्रद्धा है। वे आज जिस पद पर आंग्ल भाषा के प्रभाव के कारण जमे हैं, उसका पूरा श्रेय शिवनारायण को ही जाता है।

दुनिया कितनी भी क्यों न बढ़ गई हो, शिवनारायण की स्थिति में कोई खास परिवर्तन नहीं आया है। आखिर जनपद की नौकरी कामधेनु तो नहीं हो सकती। और सन् 60 के आसपास मास्टर को वेतन ही कितना मिलता था। मात्र गुजारे के लायक। यह बात सत्य थी कि जमाना सस्ते का था, लेकिन शिवनारायण को न ही सिर्फ अपने छः बच्चे और एक अदद पत्नी का निर्वाह करना था बल्कि असमय काल-कवलित हुये अपने अग्रज के चार बच्चों का पालन भी करना था। खर्चा बड़े मुश्किल से चला पाता था। कुछ धनिक व्यक्तियों के गधे बच्चों को घोड़ा बनाने का काम भी उन्होंने हाथ में लिया था, लेकिन उससे मिलने वाला पारिश्रमिक भी गृहस्थी में घुस जाता था। लोग कहते थे कि शिवनारायण के देश यानि यू० पी० में कुछ जमीन है और शिवनारायण हर वर्ष उस जमीन पर पैदा होने वाली फसल का हिसाब लेने देश अवश्य जाते थे। लेकिन अटिया बटिया की खेती में क्या हाथ आता होगा उनके-यह कहना

मुश्किल है। सत्य तो यह है कि अटिया-बटिया की काश्तकारी की स्थिति शहर की रंडी से भी बदतर होती है।

यदि आज के जमाने के किसी भी आदमी के पास शिवनारायण जैसी जिम्मेदारियां होतीं, तो वह निश्चित ही या तो भगोड़ा हो गया होता या फिर टी० बी० या ब्लड प्रेशर का मरीज। लेकिन वाह रे शिवनारायण ! क्या मुस्तैदी से जिन्दगी जी, बच्चे पाल और ठस्से से दिन काटे-यह सब कइयों को हमेशा अविस्मरणीय रहेगा। इस सबके बावजूद भी उस जमाने में शिवनारायण के पहिनावे में एक विशेषता रहती थी। सफेद झकझक मलमल की धोती पर सिर्फ सफेद या काला का पीताम्बरी कुर्ता उनका प्रमुख पहिनावा था। उसके ऊपर गांधी टोपी और पैरों में ट्रक के बेकार टायरों की बनी चप्पल होती थी। वेशभूषा साधारण होने के बाद भी उनके चेहरे की चमक और उस पर झलकता आत्म-विश्वास उनकी गरिमा में और भी चार चांद लगा देता था। घर तो क्या पूरे मुहल्ले की बहुयें बिना चद्दर और घूंघट के बाहर नहीं निकल सकती थीं। बड़ी कठिनाइयों से उन्होंने बच्चों को पढ़ाया था लेकिन वे सीमित आय के अवरोध से प्रतिभासम्पन्न होने के बाद भी ज्यादा पनप नहीं पाये थे। बड़ा लड़का मैट्रिक करके शहर की तहसीली में बाबू हो गया और उससे छोटा फूड आफिस में लिपिक। जनपद की नौकरी से सेवा निवृत्ति के बाद शिवनारायण कस्बे से शहर आकर बड़े और छोटे लड़का के साथ रहने लगे थे। जनपद ने उनकी कोई पेंशन नहीं बांधी और फंड का पैसा इतना कम मिला कि रिटायरमेंट के बाद बच्चों पर रौब जमाना संभव नहीं था। बड़ी जी-हुजूरी के बाद लड़की का ब्याह कर पाये थे।

शहर के तीन कमरे के मकान में उनके लिये कोई निर्धारित स्थान नहीं था। एक कमरा किचिन में परिवर्तित हो गया था, जहां करीब-करीब रात दिन बुरादे की सिगड़ी जलती रहती थी। शेष दो कमरों में लड़कों ने कब्जा कर लिया था। शिवनारायण के बच्चे उनके अनुज के पास रह कर शिक्षा पा रहे थे-कस्बे में ही रहकर। सामने के कमरे के पास बनी परछी में उनका सारा समय बीत जाता था। बड़ा अटपटा लगता था उन्हें। बहुयें भी थोड़ी अशिष्ट

हो गई थी। गाँव में किये जाने वाला परदा अब विलीन हो गया था और उनकी बहुएं उनके सामने भी खुले सिर रहने लगी थीं। बहुओं को नाम से बुलाया जाने लगा था। पहले पहल उनने इसका विरोध किया था, लेकिन लड़कों पर आश्रित रहने के कारण उनने कड़वे सुनते-सुनते समझौता कर लिया। अब कोई भला आदमी उनके अंतर को कुरेद देता था, तो वे बच्चों के समान रो पड़ते थे। कह उठते थे 'बेटा पता नहीं कैसा जमाना आ गया है। मान इज्जत सब कुछ आज आडंबर हो गया है। अब तो भगवान उठा ले तो ही अच्छा है।' लेकिन गरीब और दुःखी को मौत जल्दी नहीं आती। कुढ़न-कुढ़न कर जीना पड़ता है और मौत भी किश्तों का लालच देती हुई आती जाती रहती है।

*   *   *

पिछले वर्ष जब उनकी अर्धांगिनी का देहांत हुआ, तो शिवनारायण के पास दुख-सुख की बातें करने का साधन ही समाप्त हो गया। लड़के अपने-अपने कामों में मस्त थे और बहुओं से दूरी रखना शिष्टाचार था। शिवनारायण भी अपने आप में सिमट गये। नाती-नातिनियों के साथ प्यार के माध्यम से बंधे रहना चाहते थे, लेकिन नाती-नातिनियाँ बड़े बहादुर थे। पढ़ने में वे कोसों दूर भागते थे। शिवनारायण उन्हें किसी रूप में स्वयं से न बाँध पाये। पुराने दिनों की यादें उनकी तनहाइयों में ताजा होने लगती थीं और वे उस जमाने के विद्यार्थियों को याद करके आँखें तर करते रहते थे।

उम्र के विकास के साथ-साथ शिवनारायण की स्थिति घर में अजनबी सी होने लगी थी। लड़कों का व्यवहार कुछ इस प्रकार का हो गया था कि वे महसूस करने लगे थे कि सब शिवनारायण की क्रमिक मौत का इंतजार कर रहे हैं। उनका दृष्टिकोण और व्यवहार नितांत आर्थिक हो गया था। जरा-जरा सी बातों पर अब न ही सिर्फ लड़के और बहुयें झुंझला उठती थीं, बल्कि नाती-नातिनियों का व्यवहार भी आधुनिकता का पुट पकड़ता जा रहा था।

*   *   *

शिव नारायण मेरे दूर के रिश्तेदार लगते हैं। मेरी आर्थिक स्थिति अच्छी होने के कारण मेरी पत्नी अतिथि-सत्कार का भारतीय दृष्टिकोण व्यवहार में

कार्यान्वित करती रहती है। क्या मजाल कि मेरे घर में कोई भी बिना खाये-पिये चला जाये। पारिवारिक वातावरण काफी सुखद है। अहं को हमने करीब-करीब दफन कर दिया है। शिवनारायण घर का चक्कर हफ्ते दो हफ्ते में लगा ही लिया करते हैं। उनकी दिनचर्या अब बड़ी अजीब सी हो गई है। मुर्गे की बांग के कुछ ही देर बाद वे घर छोड़ देते हैं और किसी को नहीं पता कि कब घर पहुँचते हैं। घर आते ही स्वयमेव कामों में हाथ बँटाने लगते थे। जबकि मेरी पत्नी उन्हें हमेशा मना करती रहती थी। उन्हें कोई लालच नहीं था। लालच था तो सिर्फ इतना कि कोई बैठकर उनका दुखड़ा सुन ले। और इतनी फुरसत आज के जमाने में किसको रखी है। आफिस जाने के पहिले दैनिक कार्यों के बाद मेरे पास काफी समय रहता है। मन तो मेरा भी नहीं होता था कि शिवनारायण की पुत्र की बातों, लड़कों का व्यवहार, नये जमाने की बुराइयां और पुराने जमाने की अच्छी बातों को सुनूं, लेकिन शिवनारायण की आंखों में तरल अनुग्रह मेरे होठ सी देता था और मैं मौन भाव से हुँकार भरते हुए शिव-नारायण की बातों का लुत्फ उठाने लगता था। कितना सुख-संतोष मिलता था शिवनारायण को यह सब सुनाकर, इसका बखान नहीं किया जा सकता। आनन्द के भावों को मन जितनी द्रुत गति से ग्रहण कर लेता है कलम उसे लिपिबद्ध नहीं कर सकती।

यह सिलसिला काफी अरसे से चला आ रहा था। लड़कों के व्यवहार की कहानी और भी यंत्रणामय हो गई थी और शिवनारायण का अंत और भी दर्दपूर्ण। लेकिन सब कुछ चलता जा रहा था—बिना किसी व्यवधान के। रोज सुबह होती थी और रोज शाम होती थी। प्रकृति विकासरत थी। शिवनारायण का घर आना अब हम लोगों को भी अच्छा लगने लगा था। जब कभी वे निर्धारित दिनों पर नहीं आते, मन मलिन हो उठता और रह-रहकर उनकी याद तड़पा डालती। प्रकृति बड़ी निष्ठुर है। अपना काम बड़ी बारीकी और मुस्तैदी से करती है—अर्थ और स्वार्थ से परे मानवीय सम्बन्धों की रचना में। इस क्षेत्र में उसका कार्य बेमिसाल है, अद्वितीय है। मैं और मेरी पत्नी प्रकृति की इस मार के शिकार हो गये थे।

इसी दौरान पत्नी मायके चली गई थी और मैं कुछ अनचाहे कामों में व्यस्त हो गया था। शिवनारायण का आना भी कम हो गया। लेकिन व्यक्तिगत व्यस्तता के कारण शिवनारायण से मिलने उसके घर न जा सका। इस तरह करीब डेढ़ माह गुजर गया। शिवनारायण को देखने की आस लिये मैं इच्छा पूरी ना कर पाया। पत्नी भी मायके-प्रवास से वापिस आ गई। आते ही शिवनारायण के बारे में पूछा। मैंने जब अनभिज्ञता जाहिर की तो वह बरस पड़ी लेकिन अपनी व्यस्तता की कोई सफाई मैं न दे सका।

* * *

करीब पन्द्रह दिन बाद शिवनारायण घर आये। पहले से काफी झटक गये थे। चेहरा काफी मलिन हो गया था। कपड़े भी पहिले से ज्यादा मैले लग रहे थे। लगता था कि अंदर कुछ पिघल रहा है और वह किसी भी समय आत्मीयता के आघात में लावा के समान फूट पड़ेगा। मैंने छेड़ना अनुचित समझा। लेकिन पत्नी पूछ ही बैठी—"बाबूजी ! इतने दिन कहां रहे ?" हम लोग शिवनारायण को बाबूजी ही कहते थे।

'क्या बताऊं बिटिया ! बीमार हो गया था। सोचा तुम लोगों को खबर कर दूँ लेकिन घर में कोई तैयार ही नहीं हुआ बीमारी की खबर पहुँचाने के लिये। लड़के कहने लगे कौन से मर रहे हो, जो सब को बुलाकर परेशान किया जाये। बुखार ही तो आया है।—सो बिटिया, मन मारकर खटिया पर ही पड़ा रहा।" शिवनारायण ने दुःख भरी श्वास लेते हुये कहा। हमने स्वयं को दोषी मानकर सिर नीचा कर लिया था। पत्नी ने कुछ सोच-समझकर कहा, "बाबूजी ! आप कुछ दिन यहीं रह जाइये। दिल बहल जायेगा। और फिर बिटिया का जन्मदिन भी आ रहा है चार-छः माह बाद। हम सब मिलकर मनायेंगे।'

'ऐसे भाग्य कहां बिटिया ! घर से बाहर लड़के भेजना नहीं चाहते और रोज मेरे मरने का इंतजार करते हैं। ऐसा लगता है पिछले जन्म के पापों का बोझ ढो रहा हूँ। देखो कब तक शरीर चलता है।"

बाबूजी आप कोई समाजसेवी संस्था ज्वाइन कर लीजियेगा। समय भी कट जावेगा और मन का दुख भी हल्का हो जावेगा।" मैंने सुझाव दिया।

"लेकिन बेटा, अब उम्र ही कहा रही है ।" शिवनारायण हताशा से बोले । मुझे आफिस की देर हो रही थी । मैं तैयार होकर निकल पड़ा । शिवनारायण घर पर ही रहे ।

*　　　　*　　　　*

एक दिन अचानक मुंह अंधेरे ही शिवनारायण घर आ गये । कुछ प्रसन्न नजर आ रहे थे । ऐसा परिवर्तन लक्ष्य करके हम भी खुश हो गये । मुरझाया फूल अचानक जीवित हो उठे तो कितनी खुशी होती है, यह तो नहीं किया जा सकता । पत्नी ने शिवनारायण से पूछा—

"बाबूजी ! सब ठीक तो है । बड़े खुश दिख रहे हैं आप । क्या कहीं की लाटरी खुल गई ?"

"हां, लाटरी खुली ही समझो । बिटिया तुम लोगों का शुक्रिया अदा करने आया हूं ।" शिवनारायण ने हर्ष से कहा ।

"किस बात का ?" मैंने पूछा ।

"मैंने एक संस्था ज्वाइन कर ली है । लड़के-लड़कियों के विवाह में यह संस्था कार्य करती है । बच्चों को पढ़ाती भी है और न जाने क्या-क्या करती है । मैं तो धन्य हो गया । समय भी कट जाता है और मन भी प्रसन्न रहता है ।"

"यह तो बड़ी खुशी की बात है ।" हम दोनों एक साथ कह उठे ।

"इसी बात पर एक-एक चाय हो जाये ।" मैंने सुझाव रखा ।

"बिटिया, चाय तो मैं बनाऊंगा आज तुम लोगों के लिये ।" शिवनारायण ने आदेशात्मक स्वर में कहा । हमने उनके सुख में दखल देना उचित नहीं समझा । शिवनारायण आनन-फानन चाय बना लाये । चाय की चुस्कियां के बीच शिवनारायण ने कहा, "बेटा एक अनुरोध है । हमारी संस्था दान पर चलती है । हम लोग चन्दा इकट्ठा करते हैं और उसी के सहारे छोटी मोटी गतिविधियां करते रहते हैं । मैं भी तुम लोगों से सहायता चाहता हूं ।"

"कितना चन्दा लेती है आपकी संस्था ।" मैंने पूछा ।

"बहुत थोड़ा । मात्र पांच रुपये ।"

"लेकिन इतने थोड़े से पैसे से क्या होता होगा ?"

सभी लोग थोड़ा-थोड़ा पैसा इकट्ठा करते हैं। मैंने भी दस-बारह लोगों से बातचीत कर रखी है। सभी ने सहायता का आश्वासन दिया है।"

'तो फिर हमसे भी पैसा ले लीजिये। माधुरी ! बाबूजी को पाँच रुपया दे दो।' माधुरी उठकर अन्दर चली गई। शिवनारायण का हर्षित चेहरा और भी दैदीप्यमान हो गया।

*　　　　*　　　　*

उसके बाद शिवनारायण हमेशा पाँच-छह तारीख को पाँच रुपया चन्दा लेकर जाने लगे। उनका प्रसन्न मुख और व्यवहार में कमी ना रही जिन्दादिली या आना देखकर हर बार मैं प्रसन्न हो गये। इसी बीच मेरी पत्नी भी स्कूल जाने लगी। पत्नी की दोपहर करीब-करीब फ्री हो गई। मैंने पत्नी को सुझाव दिया कि अब तुम भी शिवनारायण की संस्था में जाकर सेवा के काम में हाथ बटा दिया करो। समय भी कट जावेगा और दुनियादारी के अनुभव भी अर्जित करने लगोगी पत्नी तैयार हो गई। शिवनारायण से बात कर करनी थी।

इसी बीच जब एक दिन शिवनारायण चन्दा लेने घर आये तो मैंने मन की इच्छा शिवनारायण को बता दी। उनका चेहरा एकदम से उतरने सा लगा। कारण कुछ समझ में नहीं आया। लेकिन शिवनारायण ने स्वयं को संभाल लिया। फिर धीरे से बोले 'बिटिया को जरूर ले जाऊँगा अपनी संस्था में। जरा समय तो आने दो।' इस बात को करीब दो माह गुजर गये। पत्नी भी काफी व्यस्त हो गई थी—गृहकार्यों में। दोपहर को उसने एक माह के अन्तराल वाला फुड प्रिजरवेशन का कोर्स ज्वाइन कर लिया था। वह भी इसी माह खत्म होने वाला था। उसकी इच्छा हो रही थी कि अगले माह से शिवनारायण की संस्था ज्वाइन कर ली जाय। इसी ऊहापोह के दौरान एक दिन शिवनारायण गजदरम ही घर आ पहुँचे। मैं तो कम मेरी पत्नी ज्यादा हर्षित हो उठी। पत्नी पहले से ही उठकर चाय बना लाई। शिवनारायण बैठकर यहाँ-वहाँ की बातें करने लगे। मैं बोला "बाबूजी ! आज माधुरी को संस्था में ले जाइये। आपकी सहायता करना चाहती है। समय भी कट जावेगा। कुछ

प्रिजरवेशन का काम कल खत्म हो गया है। काफी जिद कर रही थी कि आपके सान्निध्य में रहकर कुछ सीख ले।"

शिवनारायण चुप थे। माधुरी ज्यादा ही उत्साहवर्धक थी। इच्छा न दबा सकी और पूछ बैठी, "बाबूजी कितने बजे तैयार रहूँ साथ में चलने के लिए।" शिवनारायण अब भी चुप थे। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या बात है। माधुरी के बार बार के अनुरोध पर शिवनारायण रो पड़े। मैं भी भौचक्का हो गया। शिवनारायण धीरे-धीरे सुबकने लगे और फिर बोले, "बिटिया मेरी कोई संस्था व्यादन नहीं की है। तुम लोगों से पैसा ले जाकर मैं स्वयं पर खर्च करता था। अब पैसा रहे नहीं थे। पत्नी के देहावसान के बाद बहुओं से पैसा माँग नहीं सकता था। और फिर थोड़े बहुत व्यक्तिगत खर्चे तो लग ही रहते हैं। इसलिए तब लोगों को धोखा देकर पैसा इकट्ठा करता रहता था। मैं काफी शर्मिन्दा हूँ। मुझे माफ कर दो।" ऐसा कहकर शिवनारायण फिर फफक-फफक कर रोने लगे। हम लोग बड़ी कठिनाई से चुप करा पाये। पत्नी मौन भाव से शिवनारायण की ओर देख रही थी और शिवनारायण सिर नीचा किये स्वयं में खोये से नजर आ रहे थे। मैंने पत्नी से कहा, "माधुरी, बाबूजी को दस रुपया चन्दा का दे दो। अब पाँच की जगह दस रुपये चन्दा दे दिया करो। इसके बिना संस्था नहीं चल सकती।" माधुरी मंत्रमुग्ध सी मेरी उदारता को प्रशंसात्मक नजरों से देखकर रही हो कि और अन्दर के कमरे में चली गई। शिवनारायण निरुत्तर हो गये। मैं बिल्कुल उनके पास चला गया और सट गया। फिर कान में फुसफुसाकर धीरे से बोला, "बाबूजी! संस्था की चर्चा अब किसी से मत कीजियेगा। अन्यथा लोग आपको क्या समझेंगे।"

शिवनारायण मूक भाव से मेरी ओर देखने लगे। आभार की अव्यक्त झलक उनकी आँखों में स्पष्ट नजर आ रही थी। इतने में ही माधुरी पर्स लेकर आ गई और अपने हाथ से दस रुपये बाबूजी को थमा दिये। फिर मेरे कान में कुछ बोलकर शिवनारायण से बोली, 'बाबूजी परसों बच्ची का जन्मदिन है। कल आ जाइयेगा। थोड़ा हाथ बटा दीजियेगा।'

'बिटिया! अब मैं किस मुँह से तुम लोगों के पास आऊँ।'

"बाबूजी, अवश्य आइयेगा। अन्यथा हम समझेंगे कि आप बुरा मान गये।"

"तब जरूर आऊँगा।"

*　　*　　*

दूसरे दिन उषा की अरूणिमा के हटते ही शिवनारायण घर पहुँच गये। दिन भर खुशी-खुशी माधुरी के साथ लगे काम कराते रहे। शाम जब मैं आफिस से घर लौटा तो शिवनारायण को व्यस्त और खुश पाकर बहुत प्रसन्न हो गया। फिर वे धीरे से मेरे पास आकर बोले, बेटा माधुरी का हाथ बटाना। मैं जा रहा हूँ। कल शाम जन्म-दिन के समय पहुँचूगा।" शिवनारायण जैसे ही घर जाने लगे, माधुरी ने रोक लिया। दौड़ी-दौड़ी अन्दर गई और पैकेट उठा लाई। शिवनारायण के कान में कुछ फुसफुसाकर उसने वह पैकेट उन्हें थमा दिया। शिवनारायण ने बिना कुछ कहे वह पैकेट रख लिया और चुपचाप चले गये। मैंने पत्नी से उत्सुकता वश पूछा "पैकेट में क्या था ?"

"तुम्हारे काम की चीज नहीं थी।" पत्नी ने कहा और अन्दर चली गई।

मैं 'अच्छा-अच्छा' कहते हुए दैनिक कार्यों में लग गया।

*　　*　　*

बच्ची के जन्मदिन की शाम बड़ी रङ्गीन थी। घर के चतुर्दिक बन बाग में रङ्ग-बिरङ्गी बिजलियां चमचमा रही थीं। अतिथियों का जत्था खानपान में व्यस्त था, लेकिन शिवनारायण अभी तक नहीं आये थे। हमारी आँखें रह-रहकर भीड़ में शिवनारायण को तलाश रही थीं। लेकिन उनकी चमक अभी भी क्षीण थी। नौ बजे रात जब करीब-करीब सभी आमन्त्रित विदा हो गये और हम बगीचे में ईजी चेयर पर बैठे बच्ची से बतिया रहे थे, दूर से शिवनारायण आते दिखाई दिये। उनकी झलक से ही हम प्रसन्न हो गये। आते ही उसने बच्ची को उठा लिया और बेतहाशा चूमने लगे।

आज शिवनारायण अपने पुराने लिबास में थे। सफेद झक्क मलमल की धोती के ऊपर कोसे का कुरता चमचमा रहा था। गांधी टोपी कई दिनों के बाद शिवनारायण के सिर पर दिखी थी। उसने धीरे से एक पैकेट बच्ची को थमा दिया। नासमझ बच्ची उसे पाकर खुश हो गई। लेकिन हम पूछ बैठे—

'बाबूजी ! काफी देर लगा दी। हमारी तो आँखे ही पथरा गइ—प्रतीक्षा करते-करते। कहाँ चले गये थे आप ?"

कही नही गया था। स्वय ही देर से आया जिससे कि बच्चो का जी भर प्यार कर सकू और तुम लोगो से कुछ बात।"

हम चुप हो गये। बच्ची ने पैकेट खोल दिया था और उसमे से लाल रङ्ग की एक फ्राक निकलकर बच्ची के हाथ मे पहुँच गई थी। बच्ची चिल्ला उठी थी—"पापा पापा बाबूजी कितनी सुन्दर फ्राक लाये है। हम भी देखकर आश्चर्य चकित हो गये। परन्तु माधुरी बोल उठी—"बाबूजी ! इतनी महगी फ्रॉक क्यो लाये ? मैंने आपको नजराने के साथ नही बुलाया था ?"

"बेटी, यह कहना तेरा अधिकार नही है। एक छोटा सा अनुराध और है। टालना नही—नही तो दिल टूट जावेगा।"

रात और भी गहरी होती जा रही थी और-और भी शात।

शिवनारायण ने कुरते की जेब से एक डिबिया निकाली और माधुरी के हाथ मे देते हुये बोले—"बिटिया ! यह मैं तुम्हारे लिये लाया हूँ। खुशी से स्वीकार करना। मरते वक्त पत्नी ने देकर कहा था कि यह अब मेरी अमानत है। मेरे बाद जिसे उचित समझो दे देना। लेकिन सुपात्र को ही देना अन्यथा मेरी आत्मा दुखी हो जावेगी। मैंने आज माधुरी को सुपात्र समझा इसलिये पत्नी की इच्छा का सम्मान करते हुये वह को दे रहा हूँ।" शिवनारायण की आखो मे आसू बहने लगे थे। मैंने माधुरी से कहा—"खोलो देखो क्या है ?' माधुरी ने डिबिया खोली तो उसमे सोने के चार कगन चमक रहे थे। हम दोनो देखकर मूक से हो गये। माधुरी बोली—

'बाबूजी यह क्या किया आपने। आपने अपनी बहुओ का हक मुझे क्या दे दिया।"

'बेटी वह क्या होती है, यह मैं ही समझ सकता हूँ। तुम नही।"

मैं बीच मे ही बोल पडा "बाबूजी। इन्हे आप रखियेगा। बेवक्त काम आवेंगे। काफी कीमत है इनकी।"

"काफी कीमत अवश्य है लेकिन आत्मीयता की कीमत से कम। इसे अस्वीकार करके मेरी आत्मा दुःखी न करो।" शिवनारायण ने कहा और बच्ची को उठाकर फिर बेतहाशा चूमने लगे। बच्ची ने अब तक लाल फ्रॉक पहिन ली थी। 'कल आऊँगा' कहकर शिवनारायण चल दिये। माधुरी ने कंगन पहिन लिये थे। एक नजर मुझ पर डालकर बच्ची को उठा लिया और लाड़ करने लगी। मैं शान्त सा सब कुछ देख रहा था। सारा परिवेश आत्मीयता से पटा दिखाई दे रहा था। अचानक एक शंका दिमाग में कौंधी। मैं माधुरी से पूछ बैठा—"माधुरी, तुमने बाबूजी को पैकेट में क्या दिया था ?"

"जो कपड़े वे आज पहिनकर आये थे वो।"

"क्या ?"

"हाँ।" और इतना कहकर मेरी पत्नी मुझसे चिपककर फुसफुसा कर रोने लगी।



उद्घाटन

मन्त्री के आगमन की खबर सुनते ही पब्लिक हेल्थ डिपार्टमेंट की गाडियाँ अपनी गति के दूने वेग से दौड़ने लगी थी, गरज में आराम करती गाडियों को भी ठोक-पीट कर काम लायक बना लिया गया था डिपार्टमेन्ट के चीफ इंजीनियर की इच्छा थी कि भरमू गाव की पाच हजार जनसंख्या वाले इलाके में निर्मित होने वाली पानी की टकी का उद्घाटन मन्त्री के कर-कमलो द्वारा ही हो, वैसे उनके डिपार्टमेंट के मन्त्री काफी औपचारिक थे मन्त्रिमण्डल मे आने के बाद उन्होने कुछ नयी प्रथाएँ कायम की थी, उद्घाटन आदि जैसी औपचारिकताओ से उन्होने स्वय को विलग रखा था, शायद यह उनकी कम उम्र का ही नतीजा था, लेकिन उनके विचारो के कारण उनके सहयोगियो मे काफी खलबली मच गयी थी। लेकिन जनता और डिपॉर्टमेन्ट के अनुरोध के वे कायल थे आखिर सामाजिक प्रतिष्ठा बिना भाषणा के कही बनी है ? बुजुर्गवार सहयोगियो ने उन्हे समझाया था, "राजा को अपनी नीतियो की घोषणा जनता के बीच ही करनी चाहिए, कुर्सी पर बैठ कर फाइलो का निपटान से कुछ नही होने वाला है फाइलो के निपटान के लिए तो सरकार ने सक्रेटरी रख ही छोडे है।"

धीरे-धीरे बात उनकी समझ मे आ गयी थी और अपनी औपचारिकताओ को उन्होने थोडी-थोडी ढील देनी प्रारम्भ कर दी थी। पिछले माह ही उन्होने भागमभाग करके दस विशिष्ट योजनाओ का विधिवत् उद्घाटन किया था। पपरो मे उनकी तसवीरे छपी थी। और उनके हितैषियो के अनुसार उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा द्विगुणित हो गयी थी इन सारे आयोजनो का श्रेय अपरोक्ष रूप मे चीफ इन्जीनियर ठाकुर को गया था और लोगो का ख्याल था कि ठाकुर की इज्जत मन्त्री जी की नजर मे बढ गयी थी। वैसे भी ठाकुर रिटायरमेंट की कगार पर पहुँच गये थे।

जब ठाकुर ने डिपार्टमेंट ज्वाइन किया था तो लोग उसे मूगफली बेचने वाले डिपार्टमेंट के नाम से सम्बोधित करते थे। लेकिन ठाकुर कर भी क्या सकते थे। बड़ी मुश्किल से डिग्री पा सके थे और फिर डिपार्टमेंट की असिस्टेंट इंजीनियरी। उनके अन्य समकक्षी सिंचाई विभाग में जाकर बहते पानी के समान पैसा बटोर रहे थे और वे डिपार्टमेंट में बिखरी मूगफलियों के छिलके भर बीन रहे थे। छिलके बीनते-बीनते यदा-कदा कोई दाना हाथ लग जाता और फिर वे उसे ही पाकर स्वयं को धन्य मान लेते परन्तु बुजुर्गों की कहावतें कहीं बेमानी साबित हुई हैं? समय के साथ तो घूरे के भी दिन बहुरते हैं, पब्लिक हेल्थ डिपार्टमेंट में कुछ ही दिनों में धन का प्रवाह बढ़ गया था। सड़ा पानी पीकर जिन्दा रहने वालों को स्वच्छ शीतल जल प्रदान करने की योजनाएँ बनीं, मूग-फली का दाना स्वर्ण परतों से मढ़ गया, ठाकुर पदोन्नति पाते-पाते चीफ इन्जीनियर बन गये लेकिन मूगफली खाते-खाते उनका हाजमा इतना अच्छा हो गया था कि उसके बिना उनका काम ही नहीं चलता था। अगले माह ही उनका साथ इस मूगफली दान से छूटने वाला था। वे चाहते थे, मन्त्री जी की कृपा से कुछ एक्सटेंशन मिल जाये तो आते जाते बची उम्र के लिए इतनी मूगफलियाँ इकट्ठी कर लें कि फिर ढलती उम्र में हाजमा न बिगड़े।

सोच-समझ कर युद्ध-स्तर पर उन्होंने अपनी साख-प्रतिष्ठा को श्री प्रदान करने के लिए उद्घाटनों का सिलसिला आरम्भ कराया, मन्त्री जी से मिले, मान-मनौवल की, और फिर मन्त्री जी ने उनकी योजनाओं के विधिवत उद्घाटन की स्वीकृति प्रदान कर दी। लोग कहते थे कि ठाकुर ने मूगफली के कुछ दाने मन्त्री जी की झोली में भी डाल दिए थे।

की जगह को साफ किया गया और मंत्री जी द्वारा किये जाने वाले उद्घाटन का संगमरमरी पत्थर वाला शिलालेख भी जड़ दिया गया। सब-इन्जीनियर वसंत कुमार को सारे इन्तजाम का कार्यभार सौंप दिया गया था। वसंत कुमार बमुश्किल सारे काम करा पाया। नया-नया लड़का था। काम का अनुभव कम था। पैसे की अफरा-तफरी का भी ज्यादा ज्ञान नहीं था। उसकी साइट पर पहली बार मन्त्री जी पधारने वाले थे। जब पैसे की कमी पड़ी तो तनख्वाह फूंक दी।

काम समाप्त होने पर मन्त्री के आगमन के एक दिन पहले ठाकुर फाइनल इन्सपेक्शन के लिए आ गये। दरबारी साथ में थे। शिलालेख की ओर देख कर मुंह बनाया और चिल्ला पड़े, "कौन बदतमीज सब-इन्जीनियर है। इस साइट पर?"

"सर, वसन्त कुमार!" एस० डी० ओ० करीब-करीब हाँफते हुए आये और बोले।

वसन्त कुमार की ढुढाई मची तो पता चला कि वह सबके लिए खाने-पीने का इन्तजाम करने गया है। ठाकुर को तो नाराजगी उतारनी थी। एस० डी० ओ० को पास बुलाया और कहा, "आपने कभी मंत्री का उद्घाटन देखा है?"

"खूब देखे हैं सर।" एस० डी० ओ० ने मुस्करा कर कहा।

"क्या खाक देखे हैं! इस शिलालेख के ऊपर ये क्या सड़ियल परदा लगा रखा है। क्या ऐसे ही परदे लगाये जाते हैं? कितनी बार मैंने कहा है कि मेरे अन्डर में काम पुख्ता होना चाहिए। लेकिन पता नहीं, तुम लोग क्या सोचते हो, आखिर रिटायर करा कर ही छोड़ोगे।'

सर, माफी चाहता हूँ कुछ गलती हो गई हो तो कृपया बताइए।"

'मिस्टर सिन्हा, क्या यह सब मुझे बताना पड़ेगा?" ठाकुर ने कार्यपालन मंत्री को सम्बोधित किया। मिस्टर सिन्हा सामने आकर बोला, "सर, आप रेस्ट हाउस में चलिए, काफी थक गये हैं। आप थोड़ा आराम करके खाना खाइए, तब तक मैं सब ठीक करा लूंगा।'

ठाकुर मन्त्रवत उठ कर जीप में बैठ जो उन्हें ले जाकर रेस्टहाउस छोड़

आयी। सिन्हा साइट पर ही रह गया। उसने एस० डी० ओ० को ठाकुर की सेवा के लिए रस्टहाउस भेज दिया और बसंत कुमार को बुलवा भेजा। बसंत कुमार को पहले ही घटना की सूचना मिल गयी थी। वह भागा-भागा आया। सिन्हा के सामने हकलाता सा बोला, सर, बिल्कुल नया हूँ अनुभव नहीं है मुझे उद्घाटन-कार्यक्रमों को अरेन्ज करने का।"

कोई बात नहीं तू क्या चिन्तित है। इस सारा ठकुरवा को रिटायर नहीं करवाया तो सिन्हा का बच्चा नहीं। क्या समझता है अपने-आप को।'

' सर आप हुक्म कर क्या करना है ?

सुनो ध्यान से, पहले तो तुम सफेद सिल्क का बढ़ियासा कपड़ा लाओ और उसका परदा बनवा कर इस शिलालेख पर लटकवा दो। फिर इंटे मंगवा कर शिलालेख की ओर रास्ता बना दो। गाव वालों से यहां से फूलों के गमले मंगवा कर सारी साइट सजा दो।

'लेकिन सर गाव वाले कोई सहयोग नहीं करते हैं। बहुत दुःखी हैं पानी से मत रहे हैं—मैं भी स नहीं व वो यहा तक कह रहे थे कि फंक्शन में भी नहीं आयेंगे।"

"सब आयेंगे, तुम चिन्ता मत करो। सरपंच को मेरे पास भेज देना। मैं सब ठीक कर लूंगा। कन्नी और कटोर का इन्तजाम कर लिया ?"

जी हां'।'

काहे की कन्नी लाय हो ' '

स्टील की।'

'स्टील से काम नहीं चलेगा। ठाकुर साहब के घर से चांदी की कन्नी लानी होगी अच्छा मैं स्वयं लेता आऊँगा उनके घर से तुमने कटोरा तो अच्छा वाला मँगाया है न ' '

हां सर, अच्छा वाला है।'

टॉवेल मंगा लिया है ? रोएंवाला है न ? '

"जी सर।

स्वल्पाहार के लिए सरपंच को बोल दिया है ?"

'बोला था सर, लेकिन वह कहता है, मैं कुछ भी नहीं करूँगा।'

'खैर छोड़ो, मैं निपट लूँगा उनसे।"

'सुनो, ठाकुर साहब हार्ट पेशेंट हैं, जब वे मादर का कटोरा ले कर मन्त्री जी के पास खड़े हों, तो तुम भी पास में रहना। बड़ी जल्दी घबरा जाते हैं वे, जैसे ही हाथ काँपे, कटोरा सम्भाल लेना। अच्छा जाओ, सरपंच को बुला लाओ।' बसंत कुमार जैसे ही चलने लगा। सिन्हा फिर बोला, 'बसंत कुमार सुनो। खाने-पीने का इन्तजाम कर लिया है न? खानसामा को सब समझा दिया है न? और हाँ, पीने का इन्तजाम रखा है या नहीं? मन्त्री जी तो लेते नहीं हैं लेकिन उनके साथ आए चमचे-लोग टूट पड़ेंगे खाने और पीने पर। तुम तरीके से मना करना, घबराना नहीं।'

"जी सर, सब समझ गया।"

'अच्छा जाओ तुम। जल्दी से सरपंच को बुला लाओ।"

बसंत कुमार के जाने के बाद सिन्हा ने सारी साइट का मुआइना किया। उसे सब इन्तजाम ठीक ही लगा। डूबते सूरज को इससे ज्यादा कौन नमस्ते करेगा?

थोड़ी देर बाद बसंत कुमार सरपंच को बुला लाया। सफेद झक कलफ लगी धोती और कुरता पहने वह बुड्ढा सरपंच बड़ा ही घमंडी व्यक्ति नजर आया। सिन्हा ने उठ कर नमस्ते की। फिर बोला, "आइए सरपंच जी। माफ करना, मैं स्वयं ही आना चाहता था, लेकिन आप देख तो रहे हैं कि कितनी परेशानियाँ हैं। सब ठीक-ठाक तो है न? सुना था इस बार आप भी इलेक्शन की तैयारी कर रहे हैं? अच्छा ही है। जब तक नीचे तबके का आदमी ऊपर नहीं आयेगा, देश की उन्नति नहीं होगी। आइए-आइए, बैठिए न।"

'आपको कैसे पता चला कि इलेक्शन लड़ने वाला हूँ?"

"अरे भाई, आखिर आप सब लोगों के तो सेवक हैं हम। हमें कैसे पता नहीं चलेगा।"

'कहिए, कैसे याद किया?"

"आपसे थोड़ा सहयोग चाहिए। मैंने वसंत कुमार को फोन दिया है। टंकी बनने पर पानी की लाइन सबसे पहले आपके घर ही जायेगी।"

"लेकिन लाइन लगवाने के लिए पैसा किसके पास है पब्लिक नल लगवा दीजिए, वो ही काफी होगा।"

"कैसी बात करते हैं आप सरपंच जी। टंकी बने और आपके घर नल न लगे। आखिर हम लोगों को नौकरी करना है या नहीं।"

' सरपंच सिन्हा का मुंह देख रहा था।

आप चिन्ता मत कीजिए। वसंत कुमार सब कर देगा लेकिन थोड़ी-सी विनती है ?'

कहिए आप लोग बड़े हो चुके हैं पटाने में।

"मन्त्री जी आ रहे हैं पता ही होगा ? पब्लिक जुटानी है। स्वल्पाहार का आयोजन आपकी पंचायत द्वारा होना चाहिए।'

'लोग इकट्ठा तो कर सकते नहीं, पंचायत के पास कितना पैसा रहेगा ?'

'हैं साहब मैं तो सिर्फ आयोजन की बात कर रहा हूँ सारा इन्तजाम हमारा, नाम आपका। आखिर मन्त्री जी को भी तो पता चले कि आपकी पंचायत भी उनका स्वागत कर रही है। हां, आप सिर्फ दो चीजों का इन्तजाम कर लीजिए—कुछ दरी कुर्सी वगैरह और पब्लिक बैस हम लोग तो सब देख ही रहे हैं तो बोलिए, हो जायेगा न सब इन्तजाम ?'

'आप कहें और इन्तजाम न हो, कैसी बात कर रहे हैं। आखिर पानी तो चाहिए ही न पीने के लिए आप बिल्कुल बेफिक्र रहिए तो फिर मैं चलूं ?'

'जरूर-जरूर अरे रे, लेकिन चाय तो पीते जाइए। वसंत जाओ चाय लेकर आओ।" वसंत तब तक चुपचाप खड़ा सिन्हा का मुंह देख रहा था। आर्डर सुनते ही भागा।

"और सरपंच जी कुछ फूल वाले गमलों का इन्तजाम भी करवा दीजिए।'

'सब हो जायेगा। क्या-क्या चाहिए वसंत को बता दीजिए आप।"

जिस दिन मन्त्री जी का भरसू आना था टंकी की साइट पर मेला लग

गया। दर म अधनगे नग्न मुन्ने टूटे साइट के चारों ओर मंडरा रहे थे। उन्हें इससे कोई मतलब नहीं था कि टंकी क्या होती है, लोग क्या इकट्ठे हुए हैं आदि-आदि। उनकी दिली ख्वाहिश थी कि मंत्री जी के दर्शन—आखिर कैसा होता है ? स्कूल के पंडित जी ने उन्हें बता रखा था 'मंत्री का मतलब बहुत बड़ा आदमी होता है। सारा देश उन्हीं के सहारे पर चलता है—भगवान के समान। प्रार्थना और भजन में भगवान को मिल सकते हैं लेकिन मंत्री नहीं। बच्चों के मन में एक बड़ा अजूबा पैदा हो गया था।

साइट पर बिछी दरी पर कुछ बुजुर्गवार लोग बैठे थे। शिला यासवाले पत्थर के पास कुछ कुर्सियाँ रखी थीं। गुलाब और हारसिंगार के फूल के गमले करीने से जमा दिये गये थे। सामने रखे स्टूल पर स्टील के कटोरा और रंगीन कागज में लिपटी सीमेन्ट चमचमाती कन्नी रखी था। रेत और सीमेंट मिलाकर कटोरे में मुट्ठी रख दिये गये थे। परदे से शिलान्यासवाले पत्थर को ढँक दिया गया था। परदा उघाड़ने के लिए रस्सी बांध दी गयी थी। सब कुछ व्यवस्थित था। सिर्फ मन्त्री जी के आगमन की देर थी। चार बजे शाम का समय निर्धारित किया गया था।

मन्त्री जी के साथ चीफ इंजीनियर ठाकुर नत्थी थे। दस-सवा पाँच बजे तक मन्त्री जी की गाड़ी आयी। एक-दो उद्घाटन निपटा कर वे आ रहे थे। आते ही दरबारियों में गति आ गयी। मन्त्री जी जल्दी-जल्दी मंच के पास पहुँचे। ठाकुर ने अनुरोध करके उन्हें बैठाया। सामने बैठी जनता को ठाकुर ने दो शब्द कहे और फिर मन्त्री जी से शिलान्यास करने का अनुरोध किया। तब तक मिहा ने मसाला तैयार कर लिया था। मिहा ने ठाकुर को कटोरा थमाया और मन्त्री जी को चाँदी की कन्नी थमा दी। डोरी खींच कर परदा खोल दिया गया। मन्त्री जी ने जैसे ही कन्नी से मसाला लगाया तालियाँ बज उठीं। दो शब्द बोल कर मन्त्री जी बैठ गये। सरपंच ने स्वल्पाहार पर आमन्त्रित किया। चाय-पानी चला और फिर मन्त्री जी ठाकुर के साथ रेस्टहाउस चल गये। क्षण भर में सारी भीड़ छँट गयी और गाँव के कुत्ते जूठन पर टूट पड़े। बच्चे 'ऐसा होता है मन्त्री' कहते हुए घर वापस चले गये।

रात को सोमरस के साथ सामिष भोज शुरू कर हुआ। लेकिन मन्त्री जी के ड्राइवर का पता नहीं था। मन्त्री के साथ आये चपरगट्टू ने तिनका न बचने दिया। ड्राइवर की ढुँढाई मची। पता चला, कहीं पीकर सोया पड़ा है। बमुश्किल लोग उसे ढूँढ कर ला पाये। इतने में हाहाकार मचा कि कुछ लोगों ने खाना ही नहीं खाया है। ड्राइवर भी ऐसे लोगों में शामिल था। बिना खाये गाड़ी चलाना उसके लिए दुष्कर काम था। मन्त्री जी के पास भी उड़ती उड़ती खबर पहुँच गयी। पुनः खाने का इन्तजाम किया गया। लेकिन इसमें काफी समय लग गया। मन्त्री जी तुरन्त वापस न लौट पाये। ठाकुर से बोले, 'क्या वाहियात इन्तजाम है आपके यहाँ का, कम-से-कम खाना तो पूरा बनवाना था।' ठाकुर को लगा कि उनकी मूँछ की खोखली निकल गया है। वसन्त कुमार को बुला कर डाँटा बेचारा बेवजह की सारी झिड़कियाँ सुन कर पी गया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि गलती कहाँ हो गयी है। यदि लोग पीने से मस्त होकर खाना खाना भूल जायें तो किसका दोष ▮ ?

ठाकुर स्वयं बाहर आये। सबको व्यक्तिगत रूप से पूछ-पूछ कर खाना खिलवाया। तब तक रात के बारह बज चुके थे। ठाकुर ने मन्त्री जी से कहा, "सर, आज आप यहीं आराम कर लें तो मेरा सौभाग्य होगा।"

'कल सबेरे भी उद्घाटन है। अभी निकलूँगा।'

'जैसी आपकी इच्छा, सर! चलिएगा, गाड़ी बुलवाता हूँ।"

दूर खड़ा सिन्हा मन-ही मन मंद मंद मुस्कुरा रहा था।

मन्त्री जी ठाकुर के साथ निकल गये। पीछे पूरा काफिला चल रहा था। ठाकुर बोला, 'सर, कल ही जाँच करूँगा कि खाने में अव्यवस्था कैसे हो गयी? लोग इतना-सा काम नहीं सम्भाल पाये और आपसे आशा करते हैं, सब कुछ व्यवस्थित चले। बताइए, कैसे हो सकता है?"

'हूँ।' मन्त्री जी ने धीरे से झपकीवाली मुद्रा में कहा।

'सर, आपको झपकी आ रही है आप आराम कीजिए, मैं सामने बैठ जाता हूँ?"

'ठीक है।'

एक सप्ताह बाद सिन्हा ने बसंत कुमार को बुला भेजा। बेचारा पहले ही त्रस्त था। फरमान सुन कर उसके तो होश गुम हो गये। सिन्हा ने एक नजर उस पर डाली। फिर सोचा, बेचारा बच्चा है। चीफ साब ने इसके साथ ज्यादती की है लेकिन मैं क्या कर सकता हूँ। कुछ सोच कर बोला, "बसंत कुमार जी, तुम्हारी अच्छी सेवा के लिए ठाकुर साहब ने पुरस्कार भेजा है।"

"क्या ?" बसंत कुमार ने पूछा। सिन्हा ने उसे एक बन्द लिफाफा थमा दिया। बसंत कुमार लिफाफा लेकर जाने लगा तो सिन्हा बोला 'खोल कर पढ़ लो। अच्छे काम और स्वामिभक्ति का इससे अच्छा तोहफा कभी न मिलेगा।" बसंत कुमार ने लिफाफा खोल कर पढ़ा तो उसे नीचे की जमीन दलदली नजर आयी। उसे सस्पेंड कर दिया गया था। हकलाता सा वह बोला, "सर! मेरी तो कोई गलती ..."

"मैं जानता हूँ। लेकिन ठाकुर साहब को तो एक्सटेंशन चाहिए था। उन्हें एक्सटेंशन मिल गया और तुम्हें यह पुरस्कार। मुझे तुमसे पूरी सहानुभूति है ... नाउ यू कैन गो।"

बसंत कुमार को सिन्हा के चैम्बर से बाहर निकलते ही लगा कि भरसूगाव की टंकी फूट गयी है। सारे लोग डूब गये हैं, और वह ... वह उस टंकी के मलबे के नीचे दबा पड़ा सिर्फ चिल्ला रहा है। लेकिन कोई उसकी आवाज नहीं सुन रहा है। एक क्षण उसे लगा, काश, वह मन्त्री जी का ड्राइवर होता तो ...

मोहभंग

पूरब मे पौ फटने के कुछ पहिले ही ननकू की नींद खुल गई। नींद क्या खुल गई—नींद लगी ही न थी। वह रात भर उस योजना पर मनन करता रहा था जिसका विरोध उसके कई काश्तकार साथियो ने किया था। लेकिन ननकू के अंतस म अचानक ही शासकीय नीतियो के फलस्वरूप प्रादुर्भावित आत्म-विश्वास उसे उस विरोध से उबार दिया करता था। अपनी वाक-पटुता से उसने कई ऐसे काश्तकारो को अपनी योजना मे सम्मिलित करना चाहा था जिनके ऊपर उसे काफी विश्वास था। लेकिन वे भी भावी कठिनाइयो का हवाला देकर उससे करीब-करीब कट से गये थे। फिर भी वह 'एकला चलो'' की नीति की कारगरता को एक बार आजमाना अवश्य चाहता था।

*　　　　*　　　　*

, वह उठकर दिशा गया। फिर लौटकर पत्नी अगसिया से लोटे भर चाय बनाने को कहा। उसका सिर्फ एक ही शौक था—सुबह-सुबह लोटा भर चाय पीना—ऐसी चाय जिसम पत्तियो का रस घट भर तक अदहन को चुरा-चुरा कर निकाल लिया गया हो। काटू को पूछ पकडकर हिच्च की आवाज के साथ उठाया। बडा मठठर बैल था काटू—लेकिन था बडा ही प्यारा—पूरे गाव म सबसे अनोखा। किसी के पास ऐसा बैल नहीं था जो पूण-लपण काला हो। आखिर नोट भी तो खर्च किये थे उसन उस खरीदन मे पूरे चार हजार। किसी की हिम्मत नही पडी थी कलुआ को खरीदन की। लेकिन उसकी जिद म बात आ गई थी और उस जिद की खातिर अगसिया की हसली आदि दाव पर चढ गई थी। कालू फिर भी नही उठा था। उसने चाबुक निकाली और बेमन से कालू के शरीर पर जड दी। धा-धो की आवाज के साथ कालू ऐसे उठ बैठा जैसे कि सोते शेर को किसी ने जगा दिया हो। उठते ही काटू ने

प्रतिशोधात्मक रूप से कल ही गोबर से लिप और रुई की ढिग लगे आंगन में गोबर छितरा दिया। ननकू को गुस्सा आ गया और वह बुआरी उठाते-उठाते बोला—'हरामी की जात। रहा न तू साला बिलकुल बेवकूफ। कितनी बार समझाया कि आदमी बनने की कोशिश मत कर। अपनी औकात में ही रह। लेकिन तू है कि समझता ही नहीं। अरे जो काम तू करता है मुझे अपनी ऐंठ दिखाने के लिए, क्या वे तुझ जैसे चार हजार वाले जानवर को शोभा देता है? छोड़ दे ये सारे काम आदमी के लिए। भगवान ने उसी को यह हक दिया है कि वह अपना घर साफ रखने के लिए पड़ोसियों के घर कचरा फेंके। और ज्यादा हो तो उसे बरबाद करने का काम करे। चल उठ बदतमीज।"

लालू पहले ही मालिक ननकू की आवाज सुनकर उठ गया था। आखिर घर की गाय का ही जाया था न वह। कोई विदेशी थोड़े ही था—कालू की तरह।

* * *

तब तक सुखेन हरवाहा आ चुका था। ननकू और सुखेन ने मिलकर बैल-गाड़ी कसी और फिर दोनों ने कालू-लालू के पुठ्ठों को सहलाया—प्यार से आगे की यात्रा सफल बनाने के लिए। ननकू ने सुखेन को बैलों को चारा डालने को कहा और फिर लोटा भर चाय पीने बैठ गया। सुखेन के लिए भी उसने पीतल के एक गिलास में चाय भर कर रख दी। चाय पीते-पीते ननकू ने सुखेन से पूछा, 'क्यों रे, सब चने दिए मंडी को ?"

"हाँ मालिक, लेकिन कुछ कह रहे थे।"

'क्या ?"

'यही कि आपका सिर फिर गया है जो गल्ला मंडी में नहीं बेच रहे हैं।"

'मंडी में ही तो बेचने जा रहा हूँ—फर्क सिर्फ इतना है कि वे आढ़तियों को देंगे और मैं कृषि उपज मंडी की नीलामी में।"

सुखेन ज्यादा समझदार नहीं था। ननकू की बात सुनकर चुप हो गया। तब तक चाय खत्म हो चुकी थी। ननकू ने कुप्पी टटोली, ढिबरी खोलकर देखा थोड़ा किरोसिन बाकी था। रास्ता कट जाएगा। मंडी से लौटने पर तो तेल

खरीद ही लेगा। ननकू ने फटे में बीड़ी निकाली। बीड़ियाँ सुलगाई और कन्दील का काच निकालकर बत्ती जला दी। कन्दील पहले कुछ भभकी—आढ़तिया कोडूमल और घनश्यामदास रामदास की बातों की तरह। शायद तेल ऊपर चढ़ आया था। फिर शान्त होकर जलने लगी। सुखेन ने कन्दील को गाड़ी के पीछे बाँध दिया। बीस बोरे गेहूँ लादा जा चुका था। ननकू ने सुखेन को चाबुक दे दिया था और गाड़ी चलाने का हुक्म देकर पीछे बैठ गया। आज उसका मन गाड़ी हाँकने का नहीं हो रहा था। भगतिया भागी-भागी आयी और रोटियों की पोटली थमा दी। जाते-जाते बोली—"सुनो! जिद मत करना। जैसा सब कहें करना।"

ननकू को लगा, भगतिया कितनी भोली है। देश में क्या हो रहा है यह निरक्षर कभी समझ नहीं पायेगी। आखिर उसका भी क्या दोष। पूरी उमर तो घूँघट में ही काट दी। जो कुछ इस दुनिया के बारे में उसने जाना है, घूँघट की एक कोर हटाकर ही तो जाना है।

सुखेन ने गाड़ी हाँक दी। ननकू ने कहा, "सुखेन, बैल न चले तेजी से तो मारना मत। बड़ा दुःख होता है इन चुप्पे जानवरों पर हाथ उठाकर।" सुखेन अच्छा गाड़ीवान था। पूरी जिन्दगी खेत, बैल और गाड़ियों के त्रिकोण में ही बीती थी उसकी।

*　　　　*　　　　*

पूरब की पौ अभी पूरी फट नहीं पाई थी। शरीर पर खरोंच से निकल आये खून की नाईं अरुणिमा मचक आकाश से संघर्ष कर उदित होने का प्रयास कर रही थी। पेड़-पौधे सभी घुप्प अँधेरे में शान्त थे—सिर्फ सड़क पर बैलगाड़ियों के पीछे लगी कन्दीलों का प्रकाश जीवन्तता का आभास देता था। घण्टियों की मद्धिम-मद्धिम आवाज आ रही थी—ठीक उसी प्रकार जैसे किसी के गले पर मन भर का बोझ रख दिया हो और वह मिमियाने वाले स्वर में अपने अस्तित्व का आभास दिला रहा हो।

सुखेन की बात ने ननकू के शान्त और सुनिश्चित मन में भँवरें पैदा करना आरम्भ कर दिया था। उसे लग रहा था, "गाँव वालों से कटकर जीना अच्छा

नहीं है। लेकिन मुर्दों के साथ कब तक जी बहलाया जा सकता है। सरकार कितना कुछ किसानों के लिए कर रही है कौन समझता है। अरे ये गाँव वाले समझें तब ना। ये तो सब लकीर के फकीर हैं। खेत में बीज बोना हो, तो बीज कोदूराम या फिर घनश्याम दास रामदास से ही लेंगे। बड़ा नहीं खोजेंगे। पैसे की आवश्यकता हो, तो इन्हीं के पास जायेंगे। क्या सहकारी बैंक वाले मर गये हैं। बैंक के घर-घर आकर सरकारी नीतियों के बारे में बताकर जाते हैं। सुन तो सभी लेते हैं लेकिन करते अपने मन की ही हैं।"

ननकू को बीड़ी की तलब लग आई थी। कट्टा निकालकर दो बीड़ियाँ सुलगाई। एक सुखेन की ओर बढ़ा दी और फिर जोर से कश मारने लगा—जैसे उस कश से वह मन के भीतर तैर आई अशांति को पी लेना चाहता हो और फिर धुएं के रूप में उसे बाहर फेंक देना चाहता हो। लेकिन क्या कभी ऐसा हुआ है। कीचड़ में पत्थर फेंको तो कीचड़ उछल ही जाता है। ननकू के दिमाग में सोच का कीड़ा फिर रेंगने लगा था।

"मुनिया का गौना इस बार अवश्य कर देना चाहता हूँ। पिछले [redacted] साल से लड़के वालों के पास से बराबर खबरें आ रही थीं। मुनिया की ननद गौने के बाद ससुराल चली गई थी। उसके ससुराल वालों को अब बहू की आवश्यकता थी। घर में काम सँभालने वाला कोई नहीं था। लड़के तो चार-चार थे लेकिन भला वे मुस्टंड क्या जानवरों का चारा-पानी करेंगे, गाय की सानी लगायेंगे? और आखिर कब तक उनकी माँ बने पर रोटियाँ सेंक-सेंककर हरवाहों को खिलाती रहेगी। और फिर जब घर सँभालना ही है, तो फिर उसमें देर-सबेर क्या। छोटे लड़कों की मेहरियाँ भी आनी थीं। लेकिन जब तक बड़के की बहू ही न आ जाये तो छोटों की क्या बिसात ।"

"लेकिन मेरे सोचने भर से ही तो मुनिया का गौना नहीं हो जायेगा, कपड़ा लत्ता चाहिए, बिरादरी को खाना खिलाना पड़ेगा। अगसिया को हसुली आदि उठाना है। और फिर लड़के ने ट्रांजिस्टर की माँग भी तो रख दी है। यदि गल्ला अच्छे भाव नहीं बिका तो कम हो पायेगा यह सब। यदि सारा गल्ला कोदूराम या घनश्यामदास रामदास को बेच भी दे, तो क्या वे सारा

पैसा एक मुश्त उसे दे देंगे ? कभी नहीं । आज तक कभी ऐसा हुआ है । खूब समझता है वह इन आढतियों को । हमेशा कुछ न कुछ पैसा दाब लेंगे । बाद में देने का वादा करेंगे लेकिन फिर लटकाते रहेंगे । कहेंगे—बोओ तो शक्कर के रूप में दे दें, सीमेंट ले जाओ, मिट्टी का तेल ले जाओ, आदि-आदि । बड़े बदमाश हैं ये सब साले । पिसू एक नम्बर के । पहिले अफीम पिलाना सिखायेंगे और जब उसकी आदत पड़ जायेगी, तो उस देने के लिये सतायेंगे । न तो माल-मत्ता खेतों में लगाते हैं, और न बराह जोतते हैं लेकिन खड़ी फसल का सौदा करके सारा पिराफिट खुद हजम कर जाते हैं । किसान के हाथ पड़ता है सिर्फ कुछ नकदी, कुछ वादे और कर्ज की उगाही ।"

'कोई कुछ भी कहे, मैं तो गल्ला कृषि उपज मण्डी में ही बेचूंगा । मुंह मांगे दाम मिल जायेंगे तो सारी कठिनाइयां निपट जायेंगी । आखिर किसान भाइयों ने ही तो इस मण्डी को बनाया है—अपने अधिकार पाने के लिये । कितने खरीददार आते हैं किसान का गल्ला खरीदने के लिए—फूड कारपोरेशन वाले, आढ़तिया और न जाने कौन कौन । पैसा भाव लगे माल बचा—नहीं तो कौन सी जोर जबरदस्ती है । और फिर मण्डी में बेचने से किसान फायदे, सरकार ने दे रखे हैं—सीमेंट का परमिट मिलेगा, शक्कर का परमिट मिलेगा, मिट्टी का तेल मिलने में कोई परेशानी नहीं । कौन अढतिया यह सब देने जा रहा है ? छी-छी जब अपने लोग ही नाव डुबायें, तो फिर ईश्वर ही रक्षक है ।

* * *

दिन निकल आया था । पंछी चहचहाने लगे थे । गाड़ी शहर के नाके पर आकर रुक गई थी । ननकू नीचे उतरा, तो क्या बैलगाड़ियों की कतारें लगी थीं । नाके का बैरियर बन्द था । कारण कुछ समझ में नहीं आया । अब तो मुर्गी कुकड़ रही है । फिर काहे रुकवा रोक रखा है । बैरियर खुलता था और फिर एक गाड़ी निकालने के बाद बन्द हो जाता था ।

नाके के पास बन खाय के टपरे अपने पूर्ण यौवन पर थे । धुआं उस तरफ उठकर फैल रहा था । ननकू के आगे करीब पचास गाड़ियां खड़ी थीं । पहले वह सबसे आखिरी में था लेकिन फिर गाड़ियां आकर उसके पीछे खड़ी होने लगीं

थी। सुखेन नीचे उतरकर शरीर ढीला करने लगा था। बैल भी इसी बहाने सुस्ताने लगे थे। ननकू ने सुखन से पूछा—"चाय पियेगा?" इच्छा जाहिर करते "चलेगी"—सुखन बालू-लालू के पुट्ठे सहलाने लगा।

मोदूराम और पारसामदास रामदास के एजेंट सक्रिय थे। किसानों से मिल-जुल रहे थे। कृषि उपज मण्डी में व्याप्त भ्रष्टाचार का हवाला देकर उन्हें अढ़तिया के यहाँ आने का आमंत्रण दे रहे थे। सीमेंट, शक्कर, किरोसिन आदि को भी दिलाने का वायदा कर रहे थे। वे ननकू के पास भी आये। उनके मालिक ने उन्हें ताकीद दी थी कि ननकू से जरूर मिलें। जागरूक किसान हैं—फसल को बढ़ाकर धन्धा नगद कर रखता है। और फिर उसका माल भी दूसरों की तुलना में काफी अच्छा था। उन दोनों का बड़ा मुश्किल से वहाँ से पीछा छूट पाया था। वे चाहते थे कि ननकू अपना माल वहीं बेचे—चाहे कर्जदार रह या न रहे। ननकू ने उन्हें शान्ति से समझा दिया था कि वह सेठों से जरूर मिलेगा।

*   *   *

रेंगते-रेंगते उसकी गाड़ी भी बैरियर तक पहुँच गई थी लेकिन बैरियर बन्द था। नाके वाला भी चोरी पच्चीस पैसा माँग रहा था। ननकू ने कहा, "जब चुंगी नहीं तो वसूली किस बात की?" "ये चुंगी नहीं है—गेट पार करने की फीस है। सब दे रहे हैं तुम भी दो।"

'सब गू खायेंगे तो क्या मैं भी ...'

"तब बैरियर नहीं खुलेगा। देखते हैं कैसे गाड़ी जाती है।"

इतने में पीछे से आवाजें आने लगी थीं, "क्यों बहस कर रहा है। बड़ा दागदर बनता है। बड़ी बाजार में घुसना है तो अंटी में पैसा क्या नहीं रखता।" ननकू ने यहाँ-वहाँ देखा और मन मसोसकर समझाने वाली मुद्रा में पूछा, "रसीद मिलेगी?"

"शाम को लौटते वक्त ले लेना।"

उसे पता था रसीद नहीं मिलेगी। उसने अंटी से पाँच रुपया निकाल कर फेंक दिया। नाके वाले ने लपककर नोट ऐसे उठाया जैसे सुअर को ताजी विष्ठा

मिल गई हो। बैरियर खुला और ननकू की गाडी गेट पार कर गई। नाके वाला बोला, 'बाबा नाराज मत हो। एक हो दो दिन तो मिलते है कमाने के। सरकार न चुगी क्या ब द की, बाल-बच्चे भूखे मरने लगे।"

ननकू के मुह मे थूक आ गया। सोचा उसके सामने थूक दे लेकिन कुछ सोचकर उसे निगल गया।

* * *

कृषि उपज मण्डी का परिसर आज फिर अपने यौवन पर उतर आया था। ननकू न गाडी पास लग पीपल क नीचे खडी कर दी और बैल खोल दिये। मण्डी के अ दर गया और यहाँ-वहा देखन लगा---इस इरादे से कि शायद वहा कोई ऐसा दिख जाय जिसस मन भर बाते की जा सके। उसन पाया कि बडे-बडे किसान और आढतियो के एजे ट मण्डी क्षेत्र मे घूम रहे थ। फूड कारपोरेशन म भी खरीददार आय हुये थे। गल्ले की बोलियाँ लग रही थी। वह चुपचाप सब कुछ देखने लगा। वह अ दाज लगा रहा था कि उसका गल्ला किस रेट से बिक पायगा। भाव ज्यादा ऊचे नही जा रहे थे। कई बार तो सरकार द्वारा समर्थित मूल्य क आस-पास ही आकर रुक जाया करत थे। फूड कारपोरेशन वाले गहूँ की क्वालिटी आककर शासकीय खरीदी का भाव किसान को बता रहे थे। कुछ बिचौलिय भी घूम रहे थे जो किसानो के कान मे कुछ फुसफुसाकर चले जाया करते थे।

उसन सुखेन को गल्ला मण्डी क अ दर ले आने क लिये कहा। सुखेन गल्ला ले आया। ननकू ने मण्डी का टैक्स पटाया और अपन माल की नीलामी की प्रतीक्षा करने लगा। नीलामी मे थोडा समय था। उसन सोचा इस दौरान उन शासकीय सुविधाओ का पता लगा ले जिनक बारे मे अखबारो मे छपा करता था और जिनक बारे मे मण्डी क लोग चिल्ला चिल्लाकर बताया करत थ। धीरे-धीरे ढोल की पोल खुलने लगी थी। उसे पता चला कि सीमे ट का परमिट तो मिल जायेगा लेकिन एक बोरी सीमे ट पान के लिय दो रुपये का चढोत्री चढ़ाना पडगी। शक्कर भी बिना दक्षिणा दिये नही मिल सकती थी। उसका मन यह सब जानकर बडा हो खिन्न हो गया। उस आशा नही थी कि

"तुम्हें पता नहीं कि इस मण्डी में हम पुड वाले गेहूँ का जो ग्रेड बता दें सरकारी खरीद उसी रेट पर होती है।"

'लेकिन आढतिया और दूसरे व्यापारियों की आँख तो बन्द नहीं है। माल देखकर ही तो वे भी खरीदेंगे।"

'तुमने देखा है कि कितने आढतिया वोटी लगा रहे हैं। काफी गल्ले की खरीदी तो हम पुड वाले ही कर रहे हैं। तुम चाहो तो तुम्हें तुम्हारे माल का भाव ज्यादा मिल सकता है।"

'कैसे ?'

इन्स्पेक्टर ने बाबू टाइप के एक आदमी को बुलाया और कहा, "आप जाकर ननकू को समझा दीजिये। काफी भोला है। उसे बता दीजिये कि हम किसान का उत्थान हर दिशा में लिये कितने दृढ़ प्रतिज्ञ हैं।"

वह बाबू ननकू को कमरे से बाहर ले गया और फिर समझाते हुये बोला—"देखो भैया। हम तो ठहरे सरकारी मुलाजिम। जिसमें तुम्हारा फायदा, उसे हम करते हैं। क्योंकि इससे दो पैसे हम भी बचा लेते हैं। थोड़ा सा पैसा खर्च करने पर तुम्हारे गेहूँ का ग्रेड बढ़ जायगा और तुम्हें ज्यादा पैसा मिल जायगा। ये आढतिया तो सब बदमाश हैं। मार लोगों से मिलकर पहिले ही तय कर लेते हैं कि कौन सा गेहूँ किस भाव बिकेगा। उससे दो-चार रुपये ज्यादा की ही बाकी बोनस है। कमीशन देते हैं न साब लोगों को। और हाँ ये जो बड़े-बड़े किसान हैं न वे अपना कचरा माल अच्छे ग्रेड का कराकर मन माफिक पैसा उगा लेते हैं। हम भी खुश वे भी खुश। सारी दुनिया खुश। चाय पियोगे ?"

'पी लूंगा।

'ननकू भैया, सरकार कोई सी भी आये, सरकारी मुलाज़िम तो नहीं बदले जाते। उनकी हवस पर ताले तो नहीं लग जाते। अरे भाई सरकार तो ये ही चलाते हैं, बाकी सब तो नाम भर कमाते हैं। यदि इनका वरदहस्त किसी पर हो गया, तो समझो कि गंगू तेली राजा भोज बन गया और यदि कहीं किसी

भोज पर इसकी भृकुटि तन गई तो समझो कि वह गंगू तेली भी नहीं बन सकता।''

''ये बताओ कि तुम मुझसे क्या चाहते हो। इतनी सारी बात करने के बाद जो मिलना है, वह पहिले भी मिल सकता है।''

''क्वालिटी इंस्पेक्टर को नजराना दो, माल का ग्रेड सबसे ऊपर। फिर तुम्हें कोई तकलीफ नहीं।''

''कितना देना होगा?''

उस बाबू ने ननकू के कान में कुछ कहा, तो ननकू प्रत्युत्तर में बोला—'इतना मैं नहीं कर सकता। मण्डी टैक्स नाका आदि पटाने के बाद बचना कितना है। और फिर ये तो सब लूट है। जाओ कह दो अपने इंस्पेक्टर से कि कुछ नहीं मिलेगा। माल का ग्रेड जो फिक्स करना चाहे, कर दे।''

''ननकू, तुम्हारे दिमाग की गर्मी तुम्हारे किसी काम नहीं आयेगी। ठंडा दिमाग हमेशा फायदेमन्द होता है।''

''अच्छा तुम जाओ तो। मैं सोचकर फिर तुम्हारे पास आऊँगा।'' ननकू यह कहकर चुपचाप गल्ले की तरफ बढ़ गया और दो बोरे आड़े करके उन पर बैठ गया।

*　　　　*　　　　*

ननकू ने निराशा में बीड़ी सुलगाई। जोर की कश लेते ही उसे लगा कि सोच का कीड़ा फिर उसके दिमाग में रेंगने लगा है। वह दर योजना से सम्भूत आशा क्रूर हो गई। वह सोचने लगा—''क्या यही गांधी बाबा का सपना था? हम लोग कहा करते थे कि मजदूर और किसान स्वतन्त्र भारत में प्रतिष्ठा के प्रतीक होंगे। क्या यही प्रतिष्ठा है कि जो चाहे नोच ले। क्या बड़ी-बड़ी योजनायें मात्र दिखावे के लिए बनती हैं? ऐसी स्थिति में तो गांव का साहूकार ही ज्यादा सम्मानजनक है जो कम से कम खून चूसकर जिन्दा तो रहने देता है। ये सरकारी मुलाजिम? धिक्कार है इन हरामी के पिल्लों को। जब अंग्रेज थे तो उनके तलवे चाटकर गुलामी को मजबूत करते रहे। तो क्या आज तलवे नहीं चाटते हैं? हमें नहीं चाटते। उस वक्त गुलामी को मजबूत

करते थे और आज साहबों और उनकी बिगलैड मर्मों के तलवे चाटकर अपनी भ्रष्टाचारी आदतों की संतुष्टि करते जा रहे हैं।"

इतने में ही सुखेन आ गया। आते ही बोला, "रास्ते में कोदूराम मिला था। पूछ रहा था कि माल बिका या नहीं।"

तुमने क्या कहा।'

"कुछ नहीं। हां, लेकिन एक बात यह जरूर बोला था कि अपने मालिक से बोलना कोदूराम आदमी है—सरकारी मुलाजिम नहीं। आदमी ही आदमी के काम आता है। ये सरकारी प्यादे क्या कभी किसी के हुए हैं।" सुखेन इतना कहकर चुप हो गया—यह सोचकर कि कहीं वह अपनी औकात से ज्यादा तो नहीं बोल गया। लेकिन ननकू जानना चाहता था कि और क्या बात हुई होगी। उसने पूछा "सुखेन, कोदूराम और क्या कह रहा था ?"

'कोई खास नहीं। बस यही कह गया कि यदि आप चाहें तो सीमेंट और भावकर वह दिला सकता है। आपको मिलने जरूर बोला है।"

ननकू फिर सोचने लगा। सोचना उसकी मजबूरी बन चुकी थी।

'माल यदि कोदूराम को बेच दिया जाये, तो क्या घाटा पड़ रहा है। ये सनर ये ही लोग तो पैसे धेले के काम आते हैं। उधार भी देते हैं। सरकारी लोगों से फायदा भी क्या हो रहा है। क्या ये मुनिया के गौने के लिए उधार दे देंगे ? कभी नहीं। ऐसा सोचते ही उसे बाप की मृत्यु का स्मरण हो आया। फसल खेत में लगी थी। पैसा अंटी में था तो लेकिन इतना नहीं कि मृत्यु से जुड़ी सामाजिक मान्यताओं को निभाया जा सके। बिरादरी को नाराज नहीं किया जा सकता था। ऐसे समय कोदूराम ने पैसा दिया था जितना मांगा उतना। ब्याज ले लिया तो क्या गजब किया था। सरकार भी तो ब्याज लेती है। और फिर क्या सरकार ऐसे समय पैसा दे सकती है। आड़े वक्त अपने लोग ही तो काम आते हैं।

वह चुपचाप उठा और सुखेन को गल्ले पर बैठाकर कोदूराम से मिलने चला गया।

* * *

ननकू को देखते ही कोदूराम गद्दी से उठकर मिलने आ गया। ननकू यह सम्मान पाकर अभिभूत हो गया। चुपचाप गद्दी पर बैठ गया। कोदूराम को पता था ननकू क्यों आया है लेकिन फिर भी औपचारिकता निभाने वह पूछ बैठा, "क्यों ननकू भैया, कैसे आना हुआ ?"

"माल का सौदा करने। मैंने निर्णय ले लिया है कि अब कभी कृषि उपज मण्डी में पैर नहीं रखूंगा।"

"मैंने तो पहले ही समझाया था इन मण्डियों का गुणा-भाग तुम जैसे लोग नहीं समझ सकते। तुम्हारा माल मैंने देख लिया है। जो भाव तुम चाहोगे, मैं दे दूंगा।"

"लेकिन एक विनती है। मण्डी टैक्स के नाके पर खर्च किया हुआ पैसा भी तुमको देना होगा।"

"मंजूर है।"

"मैं माल सुखेन के हाथ भेज देता हूँ। बचा माल घर पर है। जब चाहोगे तब भिजवा दूँगा। हां लेकिन गेहूँ के ग्रेड की सरकारी कीमत से दस रुपये ज्यादा पर बेचूंगा। मंजूर है तो बोलो।"

"मैंने तो पहिले ही मंजूरी दे दी है।"

ननकू उठकर जाने लगा, तो कोदूराम ने रोक लिया। बोला—"तुम रुको मैं माल मँगवा लेता हूँ। अरे हाँ रामलाल कक्का आये थे। कह रहे थे कि इस बार वे बहू घर लाना चाहते हैं। तुमसे मुलाकात हुई या नहीं ?"

"नहीं, लेकिन इस बार मुनिया का गौना कर ही देना है। रामलाल को अब ज्यादा दिन तक नहीं रोका जा सकता है। तुम माल खरीद कर पैसा नगद दे दो, तो इसी महीने सब काम निपटा दूँ।"

"पैसा रोक्ड ही नहीं दूँगा, चाहो तो घर में रखे माल का एडवांस भी तुम ले सकते हो।"

कोदूराम की सहृदयता से ननकू के उद्विग्न मन को किनारा मिल गया।

* * *

गुलन ने गल्ला लाकर मोटूराम की गोदाम में पहुँचा दिया। ननकू चुपचाप ...विन मन वहीं और डाल रहा था। अब तक शाम हो चुकी थी। गल्ला बाजार में बैलगाड़ियों की भरमार बढ़ गई थी। सब जाने के लिये तैयार थे। मोटूराम ने ननकू को सारे पैसे दे दिये। ननकू को एडवांस की आवश्यकता नहीं थी। इतने में ही मोटूराम के घर से एक नौकर आया और उसके कान में कुछ कहा। मोटूराम ननकू से बोला "ननकू, तुम जब चाहो अपना माल लाकर बेच देना। हाँ, लेकिन जाने के पहिले सेठानी से अवश्य मिल लेना। तुम्हें याद किया है।"

ननकू की समझ में नहीं आया कि सेठानी ने उसे क्यों याद किया है। एक बार जरूर वह सेठानी से मिला था। उस दिन वह मोटूराम से मिलने के लिए घर तक चला गया था। मोटूराम तो नहीं मिला था लेकिन सेठानी से अवश्य मुलाकात हो गई थी। उसे सेठानी का स्वभाव खूब भाया था। अगसिया बऊ ने उसकी चर्चा की थी।

शाम तेजी से उतराने लगी थी। ननकू ने जल्दी से सेठानी से मिलकर घर जाने का विचार बनाया। उसने गुलन को पैसे देकर सामान लाने भेज दिया।

* * *

सेठानी ने ननकू को बैठाया। ताजे दही की लस्सी पिलवाई। फिर बोली "ननकू, रामलाल कक्का आये थे। धुनिया का गौना इस बार कराने का विचार बना रहे हैं। तुमने तैयारी कर ली है?"

ननकू को याद आया कि सेठानी रामलाल के गाँव की ही है। वहाँ उसका अच्छा-खासा घरोबा था। रामलाल का सारा गल्ला मोटूराम की आढ़त में ही आता था। ननकू बोला, "जी सेठानी इस महीने गौना कर दूँगा। फसल बिकने का इंतजार था। सो फसल भी बिक गई और अंटी में पैसा भी आ गया। सप्ताह भर में आकर खरीददारी करूँगा और फिर गौना। वैसे आपको खबर दूँगा।"

'मैं गौने के समय गाँव जाऊँगी। रामलाल कक्का की बड़ी इच्छा है कि

यही वह घ आने के समय में गाव म रहें। तुम जाओ तैयारी करो। कोई कठिनाइ आय, तो बतलाना।"

"अच्छा सेठानी जी आपके सहयोग के लिए आभारी रहूँगा। अब चलता हूँ, रात होने वाली है।"

"रुका, मेरी ओर स एक सामान ले जाओ। मुनिया को गौने के समय दे देना—आशीर्वाद क साथ।"

ननकू सेठानी की बात सुनकर हक्का-बक्का रह गया। उसे रह-रहकर पछतावा हो रहा था कि कृषि उपज मण्डी जाकर वह किन भेड़िया के झुण्ड मे फस गया था। सरकारी कामकाज और परम्पराओ म कितना अन्तर होता है।

सेठानी ने पीले रंग की एक साडी लाकर ननकू को थमा दी। ननकू ने उसे नजर माथ स लगाया और चुपचाप बाहर आ गया।

*   *   *

सुखेन सामान लेकर गाडी के पास पहुँच चुका था। उसने गाडी कस ली थी। कंदील जलाकर पीछे लटका दी थी। ननकू ने साडी सम्भाल कर गाडी के अन्दर रख दी। अब उसका मन बिल्कुल निर्मल हो चुका था—रुके हुए पानी की गहराइयों के समान। इस समय भी उसकी इच्छा गाडी हांकने की बिल्कुल नहीं थी। सुखेन को गाडी हांकने का आदेश देकर वह गाडी में बैठ गया। सोच का कीड़ा फिर उसका दिमाग कुरेदने लगा था। जैसे-जैसे गाडी आगे बढ़ती थी, बैलों की घंटियों की ध्वनि पर सोच का कीडा और तीव्रता से उसे कुरेदने लगता था। दिन भर की घटी बातें उसके जेहन से टकराकर स्मृतियों को प्रस्फुटित कर दिया करती थी। वह समझ गया था कि आदमी गलती कहाँ पर करता है। परम्पराओं से विलग होकर जीना इंसान के लिये बड़ा ही कष्टदायक होता है।

कालू अपनी जिद मे आकर अड़ने लगा था। सुखेन ने चाबुक उठाकर उसे मारना चाहा, तो ननकू ने चिल्लाकर कहा— 'सुखेन मत मार आज इसे। किसी को मत मार। सब शांत हो गया है। गाडी तेजी से न चले तो मत चलने दे। जैसी चल चलन दे।"

इतना बोलकर ननकू अचानक ही शांत हो गया। शायद अशांत मन को

सुखन ने गल्ला लाकर कोदूराम की गोदाम में पहुँचा दिया। ननकू चुपचाप था लेकिन मन कहीं और डोल रहा था। अब तक शाम हो चुकी थी। गल्ला बाज़ार में बैलगाड़ियों की भरमार बढ़ गई थी। सब जाने के लिये तैयार थे। कोदूराम ने ननकू को सारे पैसे दे दिये। ननकू को एडवांस की आवश्यकता नहीं थी। इतने में ही कोदूराम के घर से एक नौकर आया और उसके कान में कुछ कहा। कोदूराम ननकू से बोला "ननकू तुम जब चाहो अपना माल लाकर बेच देना। हाँ, लेकिन जाने के पहिले सेठानी से अवश्य मिल लेना। तुम्हें याद किया है।"

ननकू की समझ में नहीं आया कि सेठानी ने उसे क्या याद किया है। एक बार ज़रूर वह सेठानी से मिला था। उन दिन वह कोदूराम से मिलने के लिये घर तक चला गया था। कोदूराम तो नहीं मिला था लेकिन सेठानी से अवश्य मुलाकात हो गई थी। उसे सेठानी का स्वभाव खूब भाया था। अगसिया तक में उसकी चर्चा की थी।

शाम तेजी से उतरने लगी थी। ननकू ने जल्दी से सेठानी से मिलकर घर जाने का विचार बनाया। उसने सुखेन को पैसे देकर सामान लाने भेज दिया।

* * *

सेठानी ने ननकू को बैठाया। ताज़े दही की लस्सी पिलवाई। फिर बोली "ननकू रामलाल कक्का आये थे। मुनिया का गौना इस बार कराने का विचार बता रहे हैं। तुमने तैयारी कर ली है ?"

ननकू को याद आया कि सेठानी रामलाल के गाँव की ही है। वहाँ उसका अच्छा-खासा घरोबा था। रामलाल का सारा गल्ला कोदूराम की आढ़त में ही आता था। ननकू बोला "जी सेठानी, इस महीने गौना कर दूँगा। फसल बिकने का ही इंतज़ार था। सो फसल भी बिक गई और अंटी में पैसा भी आ गया। सप्ताह भर में आकर खरीददारी करूँगा और फिर गौना। वैसे आपको खबर दूँगा।"

"मैं गौने के समय गाँव जाऊँगी। रामलाल कक्का की बड़ी इच्छा है कि

यही वह य आन य समय म गाव म रहें। तुम जाओ तयारी करो। कोई कठिनाइ आय, तो बतलाना।"

'अच्छा सठानी जी आपक सहयोग क लिय आभारी रहूँगा। अब चलता हैं रात होने वाली ह।'

'रुका, मरी ओर स एक सामान ल जाओ। मुनिया को गौने क समय दे दना—आशीर्वाद क साथ।'

ननकू सठानी की बात सुनकर हक्का-बक्का रह गया। उसे रह-रहकर पछतावा हो रहा था कि उपज मण्डी जाकर वह किन भेड़िया क झुण्ड मे फस गया था। सरकारी कामकाज और परम्पराओ म कितना अ तर होता है।

सठानी ने पील रंग की एक साडी लाकर ननकू को थमा दी। ननकू ने उसे लकर माथ से लगाया और चुपचाप बाहर आ गया।

* * *

सुखेन सामान लेकर गाडी क पास पहुँच चुका था। उसने गाडी कस ली थी। क दील जलाकर पीछे लटका दी थी। ननकू ने साडी सम्भाल कर गाडी क अन्दर रख दी। अब उसका मन बिल्कुल निमल हो चुका था—रुके हुये पानी की गहराइयो के समान। इस समय भी उसकी इच्छा गाडी हाकने की बिल्कुल नही थी। सुखेन को गाडी हाकने का आदश देकर वह गाडी मे बैठ गया। सोच का कीडा फिर उसका दिमाग कुरदने लगा था। जैसे-जैसे गाडी आगे बढती थी, बैलो की घटियो की ध्वनि पर सोच का कीडा और तीव्रता से उस कुरेदने लगता था। दिन भर की घटी बातें उसके जेहन स टकराकर स्मृतियो को प्रस्फुटित कर दिया करती थी। वह समझ गया था कि आदमी गलती कहा पर करता है। परम्पराओ से विलग होकर जीना इसान के लिय बडा ही कष्टदायक होता है।

कालू अपनी जिद मे आकर अडने लगा था। सुखेन ने चाबुक उठाकर उसे मारना चाहा, तो ननकू ने चिल्लाकर कहा—"सुखेन मत मार आज इसे। किसी को मत मार। सब शात हो गया है। गाडी तजी स न चले तो मत चलने द। जैसी चले चलन दे।"

इतना बोलकर ननकू अचानक ही शांत हो गया। शायद अशात मन को

किनारा मिल गया था। उसने बंडी में से बटुआ निकाला और दो बीड़ियाँ निकाल कर सुलगाईं। एक सुखेन की ओर बढ़ाई और अपनी बीड़ी का कश इस जोर से मारा जैसे सारी अव्यवस्था को अगस्त्य के समान पीकर उद्विग्न मन तरंगों को वश में करना चाहता हो। लेकिन बीड़ी का धुआँ क्या कम ताकतवर था? अन्दर पहुँचते ही उसने खलबली मचाना प्रारम्भ कर दिया। ननकू बेचैन सा हो गया। वह उस धुएँ को सोख न सका। बेचैनीवश उसने धुएँ को जोर से बाहर फेंक दिया। उसने देखा कि धुआँ धीरे-धीरे फैलकर सारे परिवेश में फैल रहा है। सब कुछ उस धुएँ में समा सा रहा है—वह स्वयं, सुखेन, कालू-भालू, धग-भिया, रामलाल कक्का, मुनिया और कोदूराम। है क्या कोई ऐसा जो इस धुएँ से लड़ सके। शायद कोई भी नहीं। धुआँ बाहर निकलते ही उसकी बेचैनी कम हो गई। वह निढाल होकर गाड़ी में सोने का उपक्रम करने लगा।



जतिगा

आज यूनियन के दफ्तर में फिर हलचल बढ़ गई थी। यूनियन दफ्तर के आसपास ढेर सी छोटी चूना-खदानों में जब भी कोई दुर्घटना होती, यूनियन का दफ्तर चहल-पहल से आबाद होने लगता। दुर्घटना के कारण मजदूरों के सिर पर मंडराने वाला भय यूनियन की चिल्ल-पों में मद्धिम हो जाता और फिर सारे मजदूर ठंड के दिनों में अचानक निकल आये प्रदीप्त सूर्य से दूर हुए कोहरे से मिली राहत की भांति ही कुछ हल्कापन महसूस करने। घने भट्टे में चिमनी के नीचे बनने वाले धुंए के समान वह भय उनके मस्तिष्क में खलबली और खौफ मचाये रखता लेकिन फिर जैसे-जैसे धुआं चिमनी के ऊपर बढ़कर सुदूर आकाश में बिखरता और अपना दम घोटू प्रभाव कम करता, चिमनी का निचला द्वार उतना ही साफ होता जाता। यदि खदानों से पत्थर निकालकर उनका चूना बनाना है, तो धुआं तो होगा ही। चूना-खदानें हैं तो दुर्घटना टाली नहीं जा सकती है।

चूना-खदानों में काम करने वाले मजदूरों की आवाज भूल चुकी थी। मुश्किल से अपना मुंह रोटी का निवाला कुछ पीड़ा को कम करने के लिये खोल पाते। उस समय पास के एक कस्बे के एक उदीयमान नेता ने इन मजदूरों की आवाज को बलवती बनाने का बीड़ा उठाया था। [illegible] की उर्वरा भूमि पर उसने सारे मजदूरों की एकता का बीजारोपण किया था और फिर इस यूनियन को जन्म दिया था। एक लम्बे अरसे से वह कस्बाई नेता चूना खदानों में सुरक्षा साधन मुहैया कराने के आश्वासन पर सारे मजदूरों को इकट्ठे किये रखा था। मजदूर सुनते रहते थे कि उनका नेता खान-मालिकों से मिलकर सुरक्षा-साधन उपलब्ध कराने के लिये भरसक प्रयत्न कर रहा है। लेकिन फिर उन्हें लगने लगा था कि नेता आश्वासनों की तपिश में अपनी रोटी पका रहा है। कन्या का

ख्याल था कि खान-मालिकों ने उसकी महवारी बांध दी थी। तभी तो वह अब यूनियन दफ्तर में यदा-कदा ही फटकता है। लेकिन वे विचार कर ही क्या सकते थे। सुबह से शाम तक खदानों में काम करते-करते इन मजदूरों का शरीर इस लायक नहीं रहता कि शाम को यूनियन के दफ्तर में इकट्ठे हो अपने हित की योजना बना सकें।

वह अस्थाई नेता बड़ा ही समझदार था। सहयोग और पारस्परिक सौहार्द्र का सर्वोच्च स्थान पर रखता था। जब इन चूना-खदानों में उसकी आकर्षक बरमाने में बिजली बोर्डों की निजली सप्लाई में मल खान लगी तो उसने एक स्थानीय दमदार और पहलवान छाप मजदूर को उस यूनियन का कार्यभार सौंप दिया। यदा-कदा दोनों मिलन और सोमरस पान के साथ खदानों में होने वाली घुस-पुस और अन्याय गतिविधियों की खुलकर चर्चा करते। एक खुश था कि इतना सक्षम नेता उसका हमराज है और वह सोचता था कि अगले इलेक्शन की उसकी तैयारी ठीक चल रही है।

*　　　　*　　　　*

कल खदान के ऊपर घन के पत्थर पहुँचाते समय ट्राली अचानक भगुआ के ऊपर टूटकर गिर पड़ी थी। गिरते पत्थरों ने भगुआ को बेहोश करके उसे अपने आगोश में समेट लिया था। भगुआ के बेहोश होकर गिर पड़ने की खबर चूना खदान में काम करने वाले करीब दो सौ मजदूरों के बीच द्रुत गति से फैल गई थी। अचानक ही भागमभाग और खलबली मच गई। पास में लगे विशाल बरगद की छांह में बच्चे को दूध पिलाती भगुआ की औरत करीब-करीब दौड़ती सी आई और पत्थरों के बीच फंसे बेहोश भगुआ को देखकर दहाड़ मारकर रोने लगी। मां का दूध पीकर भगुआ का नवजात शिशु मां के अचानक चले जाने से एक क्षण को रोया। लेकिन उसका पेट कुछ भर गया था। इन सारी घटनाओं से अनभिज्ञ वह टुकुर-टुकुर बरगद के पत्तों की ओर देखने लगा और फिर बीच-बीच में किलकारियां मारने लगा। इस बरगद ने इन कायरत खान-मजदूरों को अपनी छाया में पालकर बड़ा किया था। मजदूरों के माता पिता और कई पूर्वजों ने आसपास की खदानों में काम करते करते पूरी जिन्दगी काट दी थी।

भगुआ भी इसी बरगद की छाया मे पलकर बडा हुआ था। भगुआ के नवजात शिशु को अपना भविष्य पता हो या न हो, लेकिन बरगद उसके भविष्य के बारे मे पूर्णत निश्चित था।

एकत्रित हुये मजदूरो मे फुसफुसाहट होने लगी थी।

'पिछले महिने भी तो हमारा एक साथी मर गया था,'' एक मजदूर फुसफुसाया। ''तब खान मालिक ने क्या किया था,' ''क्या किया—कुछ भी तो नही। हर बार दुर्घटना होने पर मुठ्ठी भर सिक्का से मुआवजा दे दिया तो क्या होता है। आखिर कब तक खान-मालिक सुरक्षा-साधनो की अवहेलना करते रहेंगे और कब तक चून के पत्थरो का सफेद रंग हमारे खून से सिन्दूरी होता रहेगा।'' एक अल्पशिक्षित मजदूर ने फलसफाना अंदाज मे अपनी राय व्यक्त की और कमीज की जेब से बीडी निकाल कर पीने लगा।

इसी प्रकार की अनेक बातें मजदूरो के विभिन्न समूहो में चलने लगी थी। शायद आदमी की मौत से बडा कोई और साधन इस संसार मे नजर नही आता जो क्षण भर मे उसे दार्शनिक बना दे। मौत से जुडी सभी बाते, सुव्यक्ति के गुण-दुर्गुण और संसार की नश्वरता का बखान लाश को देखते ही इंसान के स्मृति-पटल मे उभर उठते हैं।

*　　　　*　　　　*

आसपास के बहुत लंबे-चौडे फैले खदानी इलाको में काम करने वाले सैकडो मजदूरो के लिये एक छोटा सा प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र खोलना खान-मालिको ने पैसे की बरबादी समझी थी। मजदूरो को काम देकर वे उन्हे इस दुनिया मे जिन्दा बनाये रखे थे, इससे बडा भी क्या कोई और परोपकार हो सकता था। आखिर क्या सारी दुनिया के परोपकार और कल्याण का ठेका इन्ही लोगो ने ले रखा है।

मजदूरो की फुसफुसाहट के साथ-साथ चीख-पुकार भी बढने लगी थी। सारे मजदूर भगुआ के बेहोश शरीर के पास इकठ्ठे हो गये थे। खदानो का उत्खनन कार्य रुक गया था। कुछ भगुआ के भाग्य को कोस रहे थे और कुछ अपने भाग्य को। कुछ मजदूर खदान के अंदर घुसकर पत्थर अलग करके उसका शरीर बाहर निकालने का प्रयास करने लगे थे। भगुआ का स्पन्दन

विहीन शरीर खदान के ऊपर लाकर घास से परी चौरस जमीन पर रख दिया गया। उसके शरीर से काफी खून निकल चुका था। शरीर में कोई स्पन्दन भी नजर नहीं आ रहा था। कुछ मजदूरों ने एक आशा से भगुआ के मुंह पर पानी के छींटे भी दिये। लेकिन शरीर में कोई स्पंदन पैदा नहीं हुआ। स्पंदन-विहीन शरीर को देखकर सभी मजदूरों के मन एक अजीब से भय से भयाक्रांत होने लगे। सभी सोचने लगे

'कहीं भगुआ ..."

लेकिन, नहीं ऐसा नहीं हो सकता।"

ऐसा सोचते ही कई निगाहें भगुआ की स्त्री और बरगद के झाड़ की ओर चली गईं। मौत में व्यक्ति को मौत की चिंता होती है। जान हथेली पर रखकर जीवन-संघर्ष में रत करीब-करीब मृतप्राय लोग भी जब मौत का कल्पना करते हैं तो एक विचित्र सा सिहरन उनके स्नायु-तंत्र में प्रविष्ट कर जाती है।

भगुआ के साथी मजदूरों ने उसे उठाया और वे द्रुत गति से खानों से पाच मील दूर बने सरकारी अस्पताल की ओर चल दिये। भगुआ की स्त्री विक्षिप्त सी हो गई थी। उसने जल्दी में बांस की टोकरी में से शिशु को उठाया और तेजी से आगे बढ़ती मजदूरों की भीड़ के साथ होकर आगे बढ़ने लगी। शिशु अब तक जाग चुका था और दूध पीने के लिए रुदन कर रहा था। लेकिन भगुआ की स्त्री को सिर्फ भगुआ की चिंता थी। बच्चा निरंतर रोता जा रहा था। उसका रुदन-स्वर पूरे परिवेश में घुलकर प्रभावहीन होता जा रहा था। उसे सिर्फ दूध की चाह थी।

*　　　*　　　*

अस्पताल की ओर बढ़ती भीड़ की खबर खान-मालिकों के एजेंटों ने उन तक शीघ्र पहुँचा दी थी। वे भी भयभीत होकर गाड़ियों में सरकारी अस्पताल की ओर दौड़ पड़े थे। यह यह पहला मामला नहीं था जब खान मालिकों को अस्पताल की तरफ भागना पड़ा हो। हर माह कुछ न कुछ दुर्घटना होती रहती थी जो उन्हें अनायास अस्पताल की ओर खींचकर ले जाती थी। तभी उन्हें अहसास हो पाता था कि खदानों में काम करने वाले मजदूरों का शरीर

भी उन्ही के समान हाड-मास का बना हुआ है। लेकिन कुछ ही अंतराल के बाद उनके अंतस् मे प्रादुर्भावित यह भावना भी लुप्त हो जाती। सब कुछ निर्धारित क्रम मे चलने लगता। उन्हे पता था कि इस प्रकार की दुर्घटनाओ के घटने के बाद और सुरक्षा साधनो के अभाव मे भी ये मजदूर काम करना नही छोड सकते हैं। आसपास के इलाके मे रोजगार का कोई साधन नही है। खेती भी बाहर महिना नही होती है, जो उन्हे पूरे वर्ष भर रोजी-रोटी दिला सके। इस प्रकार की दुर्घटनाये खान-मालिको के लिये थोडी सरकारी परेशानियां तो अवश्य पैदा कर रही थी, लेकिन आखिर क्या सरकारी अफसरात किसी और मिट्टी के बने रहते है। वे भी आदमी है। तृष्णा और आकाक्षाओ से परे तो नही है। लेकिन सब भी दिखावे के लिये भाग-दौड तो करनी ही पडती है।

अस्पताल तक पहुचते-पहुचते भगुआ की इहलीला समाप्त हो चुकी थी। उसके साथी देहोश भगुआ को नही बल्कि एक जवान मजदूर की लाश इस आशा मे ढो रहे थे कि शायद डाक्टर का इलाज भगुआ के शरीर मे प्राण-सचार कर सके। वस्तुत वे सब भगुआ की स्थिति से ज्यादा अनभिज्ञ नही थे। पर उनका आशकित मन रह-रह कर भगुआ की मौत की कल्पना कर सिहर उठता था। मजदूर की मौत से आखिर समाज का फर्क भी क्या पडता है। यदि भगुआ की मौत मजदूर के रूप मे न लिखी होती तो फिर भगुआ मजदूरो की कौम मे जन्म ही क्यो लेता।

पाच मील का लम्बा फासला तय कर भीड अस्पताल के सामने बने सुन्दर से बगीचे मे खडी थी। कस्बाई नेता अपने पुत्र का विवाह करने के लिये एक खान-मालिक की कार मे पहिले ही अस्पताल पहुच चुका था। अस्पताल के प्रागण के बाहर खान-मालिको की कारें धुले चून की सफेदी के सदृश धूप मे चमचमा रही थी। कारो मे शोफर अपनी-अपनी कारो को कपडे से साफ कर चमकाते हुए खाली समय का सदुपयोग कर रहे थे। खान-मालिक परेशानी की मुद्रा मे कभी चहल-कदमी करने लगते थे और कभी इकट्ठे होकर गुफ्तगू। कस्बाई नेता एक कुर्सी पर बैठकर अफलातूनी पोज मे मन ही मन कुछ चिन्तन कर रहा था। खानो मे सुरक्षा-साधनो के अभाव मे होने वाली इस वर्ष की

यह दसवीं मौत थी । सभी को डाक्टर के जवाब की प्रतीक्षा थी । शायद कोई फरिश्ता आकर यह कह दे कि भगुआ एक लम्बी नींद सो रहा है—थोड़ी देर बाद उठ जायेगा । इतनी सी खबर न हो सिर्फ भगुआ बल्कि सारे मजदूरों में एक नया जीवन संचारित कर देती ।

भगुआ की स्थिति का सही जवाब डाक्टर ने नहीं दिया जिससे सब आशंकित थे । सारा परिवेश क्षण भर में शांत हो गया । इस शांत वातावरण में सिर्फ रह रह कर भगुआ की स्त्री की चीत्कारें गूंज उठती थी । भगुआ का शिशु बिल्कुल शांत हो रुदन करती माँ की ओर टुकुर-टुकुर देख रहा था । शायद प्रकृति ने उसे उसकी स्थिति का आभास करा दिया था । वह अनाथ हो गया था इसलिये उसका शांत रहना लाजिमी था ।

*   *   *

कस्वाई नेता ने खान-मालिक से मिलकर भगुआ के अंतिम संस्कार के लिये आर्थिक सहायता प्राप्त कर ली थी । भगुआ के संगी-साथियों के मुख पर वितृष्णा और घृणा का भाव तैरने लगा । ऐसा लगने लगा था कि उनके अन्दर की नफरत घृणा और क्रोध का ज्वालामुखी किसी भी समय जागृत हो सकता है । कस्बाई नेता ने स्थिति सूंघ ली । उसने उन सबको फुसलाना चालू कर दिया । धीरे-धीरे सब सामान्य सा हो चला था । वह भगुआ का अन्तिम संस्कार शीघ्रातिशीघ्र करना चाहता था जिससे कि विद्रोह की आग मद्धिम पड़ जावे । खान-मालिक ने अपनी कार भगुआ की लाश को घर ले जाने के लिये शोफर सहित सौंप दी । भगुआ की लाश कार पर चढ़ाकर सब भगुआ की विलाप करती स्त्री को साथ लिये भगुआ के गाँव की ओर चल पड़े । जो भगुआ जीते जी कार में बैठने की कल्पना स्वप्न में भी नहीं कर सकता था, आज उसका पार्थिव शरीर कार का भागीदार बन गया था । अपनी-अपनी किस्मत का प्रश्न है ।

गाँव के बाहर बने श्मशान घाट में भगुआ को जला दिया गया । इस श्मशान भूमि में भगुआ जैसे और भी कई श्रम-सपूत समा चुके थे । भगुआ की

स्त्री अर्द्ध-विक्षिप्त सी होकर बार-बार गिर पड़ती थी। उसकी साथी मजदूरिनों ने उसे समझा-बुझाकर शांत कर दिया था।

* * *

फिर खान मजदूरों के उस यूनियन दफ्तर में सब भगुआ की मौत पर चर्चा करने के लिये इकट्ठे हो गये थे। उस चर्चा में वे अपने भविष्य की छवि भी झांक कर देखना चाहते थे। एक लम्बे अरसे से खानों में काम करने वाले मजदूरों के लिए सुरक्षा-साधना, चिकित्सा सुविधादि की माँगों के बावत यूनियन दफ्तर में बहसें चल रही थीं लेकिन बुद्धिजीवियों के विचार-विमर्शी समूहों के समान बहसें किसी एक किनारे पर नहीं आ पाई थीं। जैसे ही कोई दुघटना घटती, लम्बी चलती ठंडी बहसों का दमित ताप उग्र हो उठता लेकिन धीरे-धीरे पेट की आग बलवती हो उठती और सारे मजदूर काम के लिये उन खानों की ओर खिंच कर चले जाते। इन खानों में उनकी मौत का पैगाम लिखा होता था। समय के साथ सब अपने काम में मस्त होकर रोजी-रोटी जुटाने में लग जाते। दुघटनाएं व उनसे जुड़ा विषाद और आक्रोश विस्मृति की गोद में छिप जाता। आखिर इस दुनिया में जीने से ज्यादा अनिवार्य क्या कोई और चीज भी है। जो जीवन को जीने के अलावा कुछ और मानते हैं निश्चित समझिये कि उनकी पेट-क्षुधा तृप्त हो ठण्डी हो गई होगी।

कस्बाई नेता थोड़ा विलम्ब से यूनियन दफ्तर पहुँचा। वह चेहरे से कुछ परेशान नजर आ रहा था। इसलिये कि शायद वह एक लम्बे समय से खान मजदूरों को अँधेरे में रखकर गुमराह कर रहा था। पहलवान छाप चमचा कामरेड उसके साथ चिपका हुआ था। लेकिन वह परेशान नहीं था। पर रोजी-रोटी का प्रश्न था। कस्बाई नेता किसी भी कीमत पर अपने उद्देश्य से विचलित नहीं होना चाहता था। उसके दफ्तर में घुसते ही अनेक मजदूरों के मन प्रसन्न हो गये। लेकिन उस कस्बाई नेता का अंतस भीतर से बहुत ही भयाक्रांत था। सामने रखी कुर्सी पर वह चुपचाप बैठ गया। उसने कुछ क्षण विश्राम किया और फिर खड़े होकर सबको सम्बोधित करने लगा—

"खान मालिक ने भगुआ की स्त्री के लिये एक माह की पगार पेशगी, पाँच सौ रुपया मुआवजा और दो सौ रुपये तेरहवीं के लिये भेजा है।"

"क्या हमारे जीवन की कीमत मात्र पांच सौ रुपया है।" कई आवाज एक साथ उसकी ओर मुखातिब हो गई।

' नहीं नहीं, किसने कहा है। यह तो सिर्फ औपचारिक सहायता है। मुआवजा का और पैसा हम खान-मालिक से लेकर रहेंगे। "

'सुरक्षा साधन की बातों का क्या हुआ। "

"बातचीत खान मालिकों से जारी है। सुरक्षा साधन का काम दिन व दिन खर्चीला होता जा रहा है इसलिए काम में जल्दी सफलता नहीं मिल पा रही है। "

"यह तो हम पिछले साल से सुनते आ रहे हैं। हर साल खान-मालिकों को मिलने वाला फायदा बढ़ता जा रहा है। फायदा करने वाले हम मजदूरों को क्या सुरक्षा साधन भी नहीं मिल सकते? आखिर फायदे में शेयर या बोनस की मांग तो नहीं कर रहे हैं। " एक जागरूक मजदूर ने कहा। 'हमारा प्रयास काफी जोर-शोर से चल रहा है। ' कस्साई नेता ने सफाई दी।

"यदि हम सरकार द्वारा निर्धारित सुविधायें नहीं मिलतीं तो हम लेबर कोर्ट जाकर उन्हें पाने का हक क्यों नहीं मांगते। " जागरूक मजदूर ने पुनः पूछा। जो काम प्रेम और आपसी समझदारी से हो सकता है उस कोर्ट तक घसीटने से क्या लाभ होगा। बल्कि इससे तो हमारे और खान मालिकों के सम्बंधों के बीच दरार ही आयेगी। हम नहीं चाहते कि रिश्तों का तानाकर जोड़ा जाय।' कस्साई नेता ने स्पष्टीकरण दिया।

यह तो अपना खान-मालिक का चमचा लगता है। फिर हमारा क्या भला करेगा।' एक मजदूर भुनभुनाया।

कस्साई नेता ने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कि उसके द्वारा बोया बीज इतना शक्तिशाली होगा। वह मन ही मन मजदूरों में आई जागरूकता पर चौंकत हो आई। उसके प्रयासों से सम्भूत जागरूकता उसकी ही जड़ें खोखली कर उसकी रोजी-रोटी का जरिया खत्म कर देना चाहती थीं। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि मजदूरों का कैसे समझाया जाय। अतत वह समझौते वाली मुद्रा में बोला—

"मैं आज ही जाकर खान-मालिकों से दो टूक बात करूँगा। उनसे बोलूँगा कि दुर्घटना में मिलने वाली मुआवज़ा राशि में बढ़ोत्तरी की जाय। क्या मजदूर की कोई कीमत नहीं होती। जिस सीढ़ी से वे ऊपर चढ़ रहे हैं। उसे क्यों गिराकर फेंक देना चाहते हैं। आपकी जो भावनायें हैं उससे मैं इन खान मालिकों को अवगत करा दूँगा।'

'कम से कम आप हमें शासकीय दर पर मजदूरी ही दिला दें, तो हम आपके काफी मेहरबान होंगे।" आगरूक मजदूर ने फिकरा छोड़ा तो कई मजदूरों ने आवाजें लगाकर उसकी भावना का अनुमोदन किया।

कम्राड नेता ने आश्वासन दिया और अपने चमचे को लेकर खिसक जाना ही उचित समझा।

* * *

भगुआ की मौत को हुए एक दिन भी नहीं बीता था। बरगद के पेड़ के पास वाली चूना खदान पर उत्खनन का काम तेजी से प्रारंभ हो गया। वहां देखकर ऐसा नहीं लगता था कि कोई दुर्घटना वहां हो गई है। खून से सने सिंदूरी रंग वाले पत्थर फेंक दिये गये थे। ट्राली सुधार ली गई थी। मजदूर अपने कपड़े बदलकर खदान में उतर पड़े थे। लेकिन उस सारे परिवेश में एक ही कमी रह गई थी जो यदाकदा दुर्घटना के पहिले वाले वातावरण की स्मृति को कुरेद दिया करती थी। बरगद की विस्तीर्ण छाया के आगोश में भगुआ का शिशु टोकरी में नहीं सो रहा था। छाया की विस्तीर्णता आज अपरोपकारी बन गई थी। भगुआ की औरत कहां चली गई थी—किसी को पता नहीं था। कुछ कहते थे कि वह मायके चली गई है। शायद यहीं पर मजदूरी करके भगुआ की निशानी को जिंदा रख सके। वैसे खान-मालिकों ने उसे पुरुषों के बराबर मजदूरी देने का वायदा भी किया था लेकिन लोग कहते हैं कि उसे इन खदानों से अब घृणा हो गई है।

खान के चलते काम में उस समय व्यवधान उत्पन्न हो गया, जब रमन नाम का एक आदमी हेड सुपरवाइजर को पूछते आया। हेड सुपरवाइजर से मिलने पर उसने उसे एक चिठ्ठी थमा दी जो कम्राड नेता की एक सिफारशी

पत्र था। इस पत्र में रमेश को खदान में काम देने का अनुरोध था। भगुआ की मौत से एक जगह खाली हो गई थी। पत्र अनुरोध से ज्यादा एक आर्डर ही था क्योंकि हेड सुपरवाइजर को मालूम था कि कस्बाई नेता का अनुरोध का तात्पर्य क्या है। उसने पत्र पढ़कर रमेश की तरफ विद्रूप भाव से देखा। उसने रमेश को काम समझा दिया। रमेश ने ईश्वर को धन्यवाद किया और खदान में काम करने उतर गया।

* * *

दोपहर 1 बजे खान को छुट्टी हुई। सब अपनी-अपनी रोटियां निकालकर खाने लगे। रमेश घर से ही खाकर आया था। रमेश को अपने बीच पाकर सभी मजदूरों को प्रसन्नता हुई। रमेश चुप था और सभी से मिलने का प्रयास कर रहा था। वह मन ही मन खुश भी था कि कस्बाई नेता ने उसे कम से कम नौकरी तो दिला दी चाहे फिर शासकीय दर से कम मजदूरी ही क्यों न मिले। बातचीत के दौरान एक मजदूर ने रमेश से पूछा—

'तुम्हें इन खदानों के सुरक्षा उपायों के बारे में तो पता है न !''

हाँ। सब कुछ। यह भी कि यहाँ पर जान की सुरक्षा भगवान की मर्जी पर है और मौत के सिवा कोई और हमें हमारी परेशानियों से मुक्ति नहीं दिला सकता है।''

यह जानते हुए भी तुम यहाँ पर मजदूरी करने आए हो !'

'पेट की भूख से बड़ा खतरा और कुछ नहीं होता है। जीने की तमन्ना में किसे सुरक्षा साधनों की पड़ी है। मरना तो कभी है ही। तब फिर आज ही क्यों नहीं ! बताओ यदि तुम सबको यह बता दिया जाए कि इन खदानों में कभी भी सुरक्षा साधन नहीं आयेंगे तुम्हें शासकीय दर से हमेशा कम मजदूरी ही मिलेगी तो क्या तुम सब काम करना छोड़ दोगे ! क्या तुम सब अपने जीने की तमन्ना इन बेकार की बातों में गंवा दोगे ! अधिकार और शांति की बात वे करते हैं जो खा-पीकर मस्त मलंग हो गये हैं। हमारे लिये जीना जरूरी है अधिकार पाना नहीं। आज भगुआ की मौत के बाद कितने लोगों ने खदानों में काम करना छोड़ दिया है ! बताओ कोई तो बोले।''

सभी निरुत्तर थे। उसने बोलना जारी रखा। शायद आज उसे पहली बार अपनी बेकारी के कारण पैदा हुये आक्रोश और क्रोध को व्यक्त करने का अवसर मिला था।

"भगुआ की मृत्यु न होती, तो मुझे नौकरी कैसे मिलती। और जब मैं मरूँगा तो किसी और को मेरी जगह काम मिलेगा। हम सब जतिंगा के समान हैं।"

काफी मजदूर उसकी बातों को मन्त्र-मुग्ध होकर सुन रहे थे। उनमें से वह जागरूक मजदूर पूछ बैठा—"यह जतिंगा क्या होता है?"

"अरे! तुम जतिंगा के बारे में नहीं जानते। लगता है अखबार नहीं पढ़ते। आसाम का नाम तो सुना होगा।'

"हाँ! अपने ही देश का एक राज्य है।"

"उस आसाम में एक खास माह में एक विशेष घटना घटती है जिसने सभी के लिये समस्यायें पैदा कर दी हैं। सब उसका कारण तलाशने में लगे हैं लेकिन कोई हल नहीं मिल पा रहा है।"

'क्या विशेष घटना घटती है वहाँ!" कइयों ने एक साथ पूछ लिया।

'इस विशेष माह में—शायद दिसम्बर में, जतिंगा नामक पक्षियों के कई झुण्ड समुद्र पार स्थानों से आते हैं और कूद-कूद कर आत्महत्या करते हैं। इसी कारण इस स्थान का नाम भी जतिंगा पड़ गया है। आत्महत्या क्यों करते हैं, कोई वैज्ञानिक समझ नहीं पाया है। सोचो कैसी विचित्र बात है। और अब सोचो कि हमारी स्थिति क्या इन जतिंगा से कहीं अच्छी है!"

सभी मजदूर उसकी विवेचना को सुनकर शांत हो गये। अपने द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर पाने की आकांक्षा उनमें मृतप्राय हो गई। वे सब उठे और चुपचाप खदान में काम करने उतर गये। दूर बरगद के पेड़ की विस्तीर्ण छाया अपने स्थान से थोड़ी सरक गई थी। शायद किसी भावी श्रम-सपूत को छाया देने के उपक्रम में वह अपनी गतिशीलता कायम रखना चाहती थी।

उसी से अंत

श्री अपूर्व वर्मा ने जब भारतीय समाचार पत्रों में अपने विवाह का इश्तहार दिया था, तो उसमें कुछ शर्तें थीं। वैसे विचारों में वे पूरे इन्डियन हैं, परन्तु जब मेरी व्यक्तिगत मुलाकात उनसे हुई, तो पाया कि मस्तिष्क के किसी कोने में संस्कारों की जड़ अभी भी अपना स्थान बनाये हुए है। उसके बोलने का टोन और बातचीत करते समय कंधों का पिच के साथ उठाना, गिराना इस तथ्य को सिद्ध करने में कोई कसर नहीं छोड़ता कि वे काफी समय से विलायत में हैं और उस सभ्यता का उन पर काफी प्रभाव पड़ा है। वैसे वे मेरे शालेय जीवन के अच्छे मित्रों में से एक हैं। काफी गरीबी में पढ़कर कामनवेल्थ स्कालरशिप पर वे कनाडा में शोध कार्य करने गये थे। फिर शोध के दौरान ही उनका पत्र-व्यवहार कुछ भारतीय संस्थानों में नौकरी के बावत चला, परन्तु जैसा विदित था यहां की नौकरी सोने की चिड़िया नहीं थी, अतः वहीं पर सेटेल होने को सोचा।

समयानुकूल शादी की इच्छा उत्पन्न हुई और जब मेरे पास उनका पत्र आया कि भारतीय समाचार पत्रों में उसने मेट्रीमोनियल एडवरटाइजमेंट दिया है, तो मैं दंग रह गया। खैर मैं उसके यहां पर व्यक्तिगत रूप में पहुंचने का इंतजार करने लगा। कुछ समय बाद अचानक शादी का निमंत्रण आया। मैंने सोचा कि यही एक मौका अपूर्व से मिलने का है। इसी समय कुछ अंतरंग बातें हो जायेंगी और राख के नीचे दबी पुरानी यादों को कुरेदा भी जा सकेगा।

शादी के कार्यक्रम के दौरान उससे कुछ लंगोटिया यार वाली याराना चर्चा चली। पता चला कि शादी बिना दहेज के हो रही थी, मात्र कैनेडा आने-जाने के लिये कुछ पैसे नकद लिये गये थे। एक शर्त यह भी थी कि लड़की माडर्न विचारों की होना चाहिए। मैंने पूछा— कनाडा में माडर्न लड़कियों की तो कोई कमी

नहीं है, फिर विदेश मे विस्थापित होने वाले एक आदमी का भारतीय लडकी से विवाह का क्या कारण हो सकता है ?"

'भारतीय लडकियां काफी सर्वसिद्ध होती है, इसलिये ।" उत्तर मिला ।

"क्या किसी केनेडियन बाला ने तुम्हे आफर नही दिया ।"

"दिया तो था, सपर्क भी था । डेटिंग भी की कई दिनो तक, परन्तु पाया कि वे मेरे साथ एडजस्ट नही कर सकतीं ।"

'वे एडजस्ट नही कर सकतीं, कि तुम ?"

"यह कहना तो मुश्किल है ।"

"मान कि तुम्हें एक पढी-लिखी नौकरानी की आवश्यकता थी," मैंने भार-तीय दृष्टिकोण स्पष्ट किया ।

अपूर्व ने आशानुसार कोई उत्तर नहीं दिया । इतने में ही भावज के लिये बुलावा आया और बातचीत का तारतम्य टूट गया ।

शादी के बाद जब एक दिन अपूर्व को खाने पर बुलाया, तो उसकी व उसकी श्रीमती जी के आधुनिक विचारों से परिचय पाया । एक मूल प्रश्न काफी हिचक के बाद पूछ ही लिया, 'शादी के बाद अब बच्चों की पैदाइश के बारे में क्या विचार है । यहाँ पर तो शीघ्र गोदी भरना शगुन का प्रतीक माना जाता है ।'

इस बारे में अभी कुछ सोचा नहीं । वैसे तीन-चार साल तक तो कोई इरादा नहीं है । क्या अनु ?'

बेचारी नवविवाहिता अनु ने काफी शर्मिंदगी के साथ पति का साथ दिया ।

अपूर्व एवं हनीमून मनाते हुए कनडा वापिस चले गये । कुछ दिनों तक तो पत्र-व्यवहार व्यवस्थित रूप से चला और फिर दूज के चांद के समान । जीवन के चलते चक्र में मैं भी इतना व्यस्त हो गया कि अपूर्व की स्मृति धूमिल पड गई । अचानक जब चार साल बाद अपूर्व का पत्र आया तो विस्मृति की तन्द्रा भंग हुई । पता चला कि वह सपत्नीक कुछ समय के लिये देश आ रहा है । सोचा कि पत्र सुखदायक होगा, लेकिन पढकर निराशा ही हाथ लगी कि वह काफी दुखी है । दिल्ली के किसी अस्पताल से उसका पत्र-व्यवहार चल रहा था ।

सोचा शायद नौकरी के सिलसिले में पत्र-व्यवहार चल रहा हो। परन्तु मेरा मन नहीं बोल रहा था कि वह यहाँ पर सेटल होना चाहता है। बेसब्री से मैं उसके आगमन का इंतजार करने लगा।

दस सवेर वह भारत आया और उसके कुछ दिनों बाद मेरे शहर में। अनु की गोद में तीन माह की छोटी सी बच्ची थी। देखकर बड़ी खुशी हुई। पूछा—

"बच्चे के जन्म की कोई सूचना नहीं दी ?"

उत्तर नदारद। अपूर्व काफी बुझा हुआ व परेशान नजर आ रहा था। यही हाल अनु का भी था। पुनः प्रश्न पूछने की हिम्मत उसका चेहरा देखकर नहीं हुई। चाय-नाश्ते का इंतजाम किया।। इतने समय में ही मेरी दो वर्षीय बच्ची अपूर्व से काफी हिल गयी। अपूर्व भी उसे प्यार भरी नजरों से देख-देख कर निखने लगा। पुनः हिम्मत कर प्रश्न किया—

"बच्चों से दिल लग गया ?"

"नहीं तो।" उत्तर मिला। लेकिन वह स्वाभाविक झेंप मिटा न सका।

"लेकिन अब तो तुम्हारी भी बच्ची हो गई है ?"

"मेरी बच्ची कहाँ है।" एक आह के साथ वह बोला।

"तो क्या मुहल्ले वाला की है।"

मेरे इस मजाक का भी वह कोई उत्तर न दे पाया। न ही इस कथन का विरोध किया। उसकी मनःस्थिति को मैं बिल्कुल समझ नहीं पा रहा था। लगता था अंदर कोई बात उसे रह-रह कर कुरेद रही है। ज्यादा छेड़ना उचित न समझकर शाम को काफी हाउस में बैठने का निमंत्रण जैसे ही मैंने दिया, वैसे ही काफी प्रसन्न होकर शाम को आने का वायदा कर दोनो वापिस चले गये।

शाम को काफी हाउस में बैठकर काफी नचाये हुए। अंत में मैंने पूछ ही लिया—

"दिल्ली किस बाबत आना हुआ !"

"बच्ची को लेने।"

"बच्ची को लेने, क्या मतलब"

"   "

"क्या बच्ची का जन्म दिल्ली में हुआ ?"

"नहीं ।"

"तो फिर ।"

"सुनना चाहते हो।

'हाँ, हाँ, क्या नहीं ।"

'तो सुनो। विदेशी वातावरण में रहते-रहते मेरी विचारधारा में काफी परिवर्तन आ गया है । वहाँ पर सेक्स कोई अजूबा नहीं है । कोई टैबू नहीं है । पक्की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते करीब सब ही इसका स्वाद चख लेते हैं । शादी के तुरन्त बाद भी बच्चा पैदा करना उचित नहीं समझते । यदि उचित समझते हैं, तो वह है भोग । जीवन का भौतिक शारीरिक सुख । शादियाँ भावनात्मक स्तर पर नहीं होती । यद्यपि सेक्स का उपभोग शादी के पहिले मैंने किया था लेकिन भारतीय होने के कारण किसी लड़की को भावनात्मक स्तर पर जुड़ता न देख विदेशी बाला को पत्नी रूप में स्वीकार न कर सका । पुराने संस्कारों को झंझकोर में पुन भारत आने की इच्छा बलवती होती गई । सोचा शादी करके भारत में सेटेल हो जाऊँगा, लेकिन विदेश का मोह और पैसे की चमचमाहट ने ऐसा करने से रोक दिया ।'

'शादी के बाद सिर्फ एक विद्वान का यह कथन याद रहा कि शारीरिक सुख का उपभोग इतना करो कि उसमें विरक्ति हो जाये और जीवन पथ पर सत्य तत्व की तलाश कर सको । तो उसी पर चला और सुख भोगता रहा । "

'इसी बीच अनु कई बार गर्भवती हुई, लेकिन बच्चे की इच्छा न होने से हमेशा क्यूरेटिंग से नये जीव का अंत करता रहा । यह क्रम चलता रहा । न अनु और न मैं—कभी सोच सके कि प्रकृति से युद्ध हमेशा फायदेमंद नहीं होता ।

"तीन साल में दस बार क्यूरेटिंग करवाई । लेकिन दसवीं बार क्यूरेटिंग के समय डाक्टर ने बोल दिया कि अनु अब माँ नहीं बन सकती । सुनते ही मैं होशोहवास खो बैठा । अनु को कुछ पता नहीं था । वह तो सिर्फ मेरे साथ एडजस्ट करती जा रही थी । परन्तु मैं मेरे अंतरंग में इस कटु सत्य को छिपाने में बैचेन हो उठा था । अंतरंग का दुख चेहरे पर भी धीरे-धीरे उतरने लगा । मुझे हमेशा बुझा हुआ, परेशान, विरक्त देखते-देखते अनु भी परेशान हो उठी ।

हर बार कारण पूछने पर कोई न कोई बहाना बना देता। एक बार जब उसने कारण पूछा तो काफी इज्जत के बाद उस राज बताया। बेचारी सुनते ही विक्षिप्त सी हो गई। मैं अपने आपको दोषी पा रहा था।"

'समय के साथ-साथ बच्चे की तरफ हमारा मोह बढ़ता गया। लोग सच ही कहते हैं कि जब चीज होती है तो उसकी कोई कीमत नहीं होती। और जब उसे नहीं पा सकते तो वह अमूल्य लगती है। समझौता हुआ कि बच्चे को गोद लिया जाय। उसके बाद पुनः शादी के समान एक इश्तहार दिया और दिल्ली में एक बच्ची का गोद लेने के बाबत पत्र-व्यवहार हुआ। उसी बाबत दिल्ली आया था।'

लेकिन बच्चा लेने की क्या आवश्यकता थी। बहुत से लोग तो इसके बिना भी बेहतर जिन्दगी जीते हैं।

अनु की खातिर सब करना पड़ा।"

'क्या क्या घर में बच्चा आने से तुम्हें खुशी नहीं हुई।"

हाँ खुशी क्यों नहीं हुई। लेकिन बच्चे-बच्चे में फर्क होता है।"

तो फिर किसी रिश्तेदार का बच्चा गोद ले लिया होता।'

'अनु की इच्छा थी बाहरी बच्चा ही लिया जावे, जिससे कोई झंझट न हो।"

'लेकिन लड़की ही क्यों गोद ली लड़का ही न लिया होता, बुढ़ापे का सहारा तो बनता।"

'अनु का ख्याल था जब बच्चा अपना है ही नहीं, तो फिर लड़का-लड़की में क्या फर्क। अनु ने तो सिर्फ मातृत्व की पूर्ति के लिये यह साधन अपनाया। लड़की लेने में उसका अपना एक और अभिमत भी है।"

'वह क्या ?'

'विदेशी सभ्यता को अनु ने मुझसे ज्यादा समझा है। वैसे भी नारी काफी संवेदनशील होती है। अनु ने यह महसूस कर लिया कि लड़का होने से कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता है। विदेशी सभ्यता ने उसे यह बता दिया है कि लड़का बुढ़ापे का सहारा नहीं बन सकता। फिर लड़का लेने से क्या फायदा। आखिर

मैं भी तो अपना परिवार छोडकर यहा आ गया हैं। क्या मैं भारतीय समाज मे अपवाद नही हूँ ?" मैंने उत्तर न देते हुय चुप रहना उचित समझा। वह भी इतना कहकर कुछ सोचने लगा। मैंने ही शान्ति भङ्ग की।

"क्या नाम रखा है बच्ची का ?"

"निधि।"

"निधि क्या ?"

"क्योकि यह नाम हमेशा मुझे मेरे देश के संस्कारो की याद दिलाता रहेगा।"

"तात्पर्य यह कि वापिस आने का मन करता है।"

"हाँ करता तो है लेकिन अब आना नहीं चाहता।"

उसके बाद मैंने कोई प्रश्न नही पूछा।

"तीन दिन बाद पुन मैं कनेडा वापिस जा रहा हूँ।" अपूर्व ने स्पष्ट किया।

"इतनी जल्दी क्यो ?"

"जो नौकरी मैं यहा कर रहा हूँ, वह अभी स्थाई नही है। अनु का भी यही हाल है।"

मैं चुप रहा। थोडी देर बाद हम दोनो काफी हाउस से बाहर निकले और अलविदा कह अपनी-अपनी मंजिल को चल दिये। अपूर्व के मस्तिष्क में क्या उथल-पुथल मच रही होगी, मुझे पता नही। परन्तु मेरा मन काफी अशान्त हो गया था।

जाते समय अपूर्व पत्र डालने के लिये कह गया था। लेकिन पत्र नही आया। सोचता हूँ कि कुछ दिनो बाद समाचार पत्र का 'वांटेट' कालम देखूं। शायद अपूर्व ने कोई नया इश्तहार दिया हो।

इसके बाद नहीं

आज घर से निकलते ही उसका मन फिर भ्रमीत हो उठा था—कालेज गेट के पास इकट्ठी भीड़ की कल्पना करते ही। वैसे गेट के पास इकट्ठी होने वाली छात्रों की भीड़ कोई नई बात नहीं थी। अपनी पांच वर्ष की अभियांत्रिकी शिक्षा के दौरान ऐसी कई भीड़ें वह गेट के पास देख चुका था। कई बार वह उसमें शरीक भी हुआ था और छात्र नेताओं की बुलन्द आवाजों में सहयोग भी किया था—अपनी शांत और मरियल आवाज को वातावरण में फेंककर। उसकी अपनी कोई तेज आवाज नहीं थी। पारिवारिक संस्कारों से सम्भूत उसका व्यवहार हर बार उसके जोशीले विचारों में एकदम से अवरोध लगा दिया करते थे। छात्र नेताओं के साथ उसके ताल्लुकात उसे यदा-कदा भान करा दिया करते थे कि समाज-परिवर्तन की विशिष्ट शक्ति उन सब में निहित है लेकिन फिर उसे महसूस होने लगा था कि यह सब फिजूल बकवास है।

"बुलन्द आवाजें समाज-परिवर्तन नहीं ला सकतीं"—इसका अहसास उसे होने लगा था और अंतिम वर्ष तक पहुँचते-पहुँचते उसने महसूस कर लिया था कि छात्रों में आकीर्ण मतिशून्यता और अदूरदर्शिता अतत उन्हें किसी दिशा में न ले जावेगी। फिर भी यौवन का जोश इन सबको इकठ्ठा कर मात्र बुलन्द आवाजों में तब्दील कर देता था।

पूरे कालेज में वह अपनी प्रतिभा के कारण काफी प्रसिद्ध हो चुका था लेकिन उसकी यह प्रतिभा कुछ बिगड़े छात्रों की ड्राइंग शीटों के निर्माण और परीक्षा के समय की कोचिंग तक सिमट कर रह गई थी। उसकी इस प्रतिभा-प्रदर्शन का पुरस्कार ये बिगड़े छात्र कभी उसे होटल में डिनर ऑफर करके, जहाँ पर उसका पहुँचना बिल्कुल नामुमकिन था और कभी शहर के थियेटरों में लगी नई फिल्मों का पहला शो दिखाकर दिया करते थे। उसने कभी महसूस

नहीं किया कि उसकी प्रतिमा इतनी विघ्नशील होगी। लेकिन प्रतिभा विक्रेता के रूप में उसे क्या मिला है इन लोगों से—हड़ताल और परीक्षा बहिष्कार और और क्या। कुछ भी तो नहीं। कभी इस कालेज के लोग सही समय पर डिग्री लेकर नहीं निकले। जब डिग्री मिली तो नौकरी उनसे कोसों दूर भाग खड़ी हुई। डिग्री मिलते मिलते विज्ञापन पुराने हो जाते और फिर मुझे भविष्य की कल्पना में उन्हें लगता कि पहिले कभी बुलन्द की गई आवाजें अर्थहीन हो गई हैं, उनका आवेग सुस्त हो गया है और एकता के नारे कभी भी एकता के नारे नहीं होते। दो हजार छात्रों की प्रेरणा और महत्वाकांक्षायें इन मुट्ठीभर छात्रों की मुट्ठी में कैद हो गई थीं—कैद भी ऐसी कि छूटने पर हताशा के सिवा कुछ भी हाथ न आये। कई बार उसने सोचा भी कि देर में बचे छात्रों की खातिर वह इनसे द्वन्द्व कर ले लेकिन उसका विचार खाली दिमाग की उपज के सिवा कुछ न होता। उसकी विचारधारा कभी भी कार्य रूप में अनूदित न हो पाई। बल्कि कई बार जेहन में अचानक उठ खड़ी द्वन्द्व का विचार इन छात्रों के भय से दुबक कर बैठ जाता और फिर उस विचार को पुनः जीवित करने के लिये उसे काफी प्रयास करना पड़ता—अविश्रांत प्रयास।

* * *

उसने कई बार सोचा भी और तलाशने का प्रयास भी किया कि आखिर उसमें क्या कमी है कि वह इन सब गलत बातों का विरोध नहीं कर पाता। कई बार सोच-सोचकर हिम्मत भी बटोरता लेकिन फिर अचानक माँ का ख्याल करके चुप हो जाता—चुप क्या हो जाता बल्कि बिल्कुल निष्क्रिय मुर्दा के समान। पिता की असामयिक मौत ने उसके परिवार को सहानुभूति की सीमा में धकेल दिया था लेकिन परिस्थितिजन्य सहानुभूति भी शनै शनै विलुप्त हो गई थी। माँ को घर की गहरी नाकवर प्रायमरी स्कूल में मास्टरी करनी पड़ी थी। कितने कम वेतन में वह उसे पालपोसकर इंजीनियरिंग में प्रवेश दिला पाई थी। उसके सारे रिश्तेदारों ने मुँह मोड़ लिया था। रिश्तेदारों के व्यवहार से उसे असीम दुःख मिला था लेकिन उसकी माँ और भी कर्मठ और आत्मविश्वासी हो गई थी। यह तो भाग्य की बात थी कि उसके और भाई-बहन नहीं थे अन्यथा मेट्रिक के

बाद ही उसे नौकरी तलाशनी पड़ती। पिता की असामयिक मौत और माँ का परिश्रमी जीवन देखकर वह माँ की खातिर थोड़ा थोड़ा-कायर हो गया था। वह हमेशा दुखी माँ का सुख देने के सपने बुनता रहता। वह सोचता कि कहीं उससे कुछ ऐसा न हो जाये जो उसकी माँ के दुःख में आहुति का काम करे।

*   *   *

आज भी जब वह घर से परीक्षा देने निकला था, माँ के आशीर्वाद का वरदहस्त उसके सिर पर था लेकिन परीक्षा के बहिष्कार की घनीभूत होती कल्पना उसे अन्दर ही अन्दर खोखला कर दिया करती थी। उसे नहीं पता था कि वह परीक्षा दे भी पायेगा या नहीं। दो बार ऐसा हो चुका था कि सारे परीक्षार्थी गेट से ही वापिस आ गये थे—इन बिगड़े छात्रों की मेहरबानी से प्रशासन की सारी कोशिशें बेकार हो चुकी थीं। इन छात्रों की माँगें कि उन्हें सारी विषमताओं के बाद भी परीक्षा में बैठने दिया जाये, बरकरार थीं। जहाँ कुछ अन्य छात्र इन छात्रों द्वारा प्रादुर्भावित अनिश्चितता से दुखी थे, वहीं मजॉरिटी संशय की डाँवाडोल स्थिति में फंसी चक्कर चला रही थी। लेकिन कालेज गेट तक पहुँचते ही वही हुआ जिसकी उसे आशंका थी। छात्रों की माँगें बरकरार थीं और प्रशासन बेवकूफी मांगों को प्रोत्साहन नहीं देना चाहता था। छात्रों ने प्रत्येक ने गेट से ही वापिस होकर शहर में अपने विभिन्न सिनेमाघरों में जाने की तैयारी कर रहे थे। कुछ छात्र होस्टलों की ओर मुड़ गये थे। उसका अन्तर्मन उसे घसीटकर इन छात्रों के पास ले गया था लेकिन वह कुछ भी कहने का साहस नहीं जुटा पा रहा था। दिमाग में विचारतन्त्र गतिशील हो गया था लेकिन विचार जिह्वा तक आते-आते रुक जाते थे। मानसिक तनाव में कुछ समय गुजारने के बाद वह फिर इन छात्रों के साथ मिलकर हमेशा की तरह शहर की ओर बढ़ गया था—किसी सिनेमाघर में बैठकर समय गुजारने की इच्छा से।

*   *   *

घर पहुँचकर उसे फिर माँ का सामना करना था और और भी वृद्धि करनी थी उसके दुःख में—परीक्षा के बहिष्कार की चर्चा करके। वह अन्दर

ही अन्दर बहुत डरा हुआ था लेकिन इसका दोषी वह तो नही था। फिर कौन दोषी था—छात्र, प्रशासन या समय। इसका निणय करना सरल नही था। जब डरते डरते उसने घर मे प्रवेश किया, तब माँ ने घुसते ही पूछ लिया—"पेपर कैसा गया ?"

वह धीरे से बोल उठा 'माँ, आज परीक्षा फिर नही हुई।"

इतना कहकर वह स्वय को अपराधी मानते हुये मा के सामने बैठ गया। मा हमेशा की तरह शान्त लग रही थी। लेकिन उसने महसूस किया कि वह कुछ बोलना चाह रही है। थोडी देर शान्त रहकर माँ ने पूछा, "यह बहिष्कार कब तक चलता रहेगा ?"

"पता नही।"

"कितने लडके बहिष्कार कर रहे है ?"

'बहुत थोडे।"

'और कितने परीक्षा देना चाह रहे हैं ?"

"पूरी मेजारिटी।"

फिर यह मेजारिटी उन लडको का विरोध क्यो नही कर रही है।'

'उनकी आवाज को बुलन्द करने के लिये कोई सामने नही आता।'

'तू परीक्षा देना चाहता है या नही। या हर बार खाली ही लौटना चाहता है।"

"देना क्यो नही चाहता लेकिन जब परीक्षा हो तब न।"

तू क्या नही इनका विरोध करता। क्या तुझे भविष्य का ख्याल नही है।"

भविष्य का ख्याल तो है लेकिन विरोध कैसे करू।"

"क्यो ?—क्या तू कायर है ? क्या ये सब तुझे खा जायेगे ? क्या तुझे मारेंगे ? बोल।"

नही माँ मैं कायर नही हूँ। विरोध कर सकता हूँ लेकिन तेरा ख्याल करके चुप हो जाता हूँ।" ऐसा कहकर वह माँ के चेहरे की ओर देखकर भाव पढने का प्रयास करना पडा। उसे लगने लगा कि उसकी माँ के शान्त चेहरे के पीछे एक और विद्रूप छिपा है।

"मेरा क्या ख्याल करके तू चुप रह जाता है। यही न कि कोई मुझे मार न दे।"

'हां मां, मैं कुछ-कुछ ऐसा ही सोचता हूं।"

'तब तो तू बड़ा कायर है। मैं तो सोचती थी कि मेरी कोख से जन्मा सपूत बहादुर होगा लेकिन तू तो तू तो "—कहकर उसकी मां रो पड़ी।

"नहीं मां, मैं कायर नहीं हूं। मुझे कायर मत बोल। वहीं विरोध करते-करते मैं मैं "

'बोल न चुप क्यों हो गया। यही न कि विरोध करते-करते तू मर गया तो क्या होगा मेरा। यही न ?"'

वह सुनकर चुप था। मां फिर भी चुप नहीं थी। उसने बोलना जारी रखा—

'तू मेरे मरने की फिकर मत कर। जब तेरे पिता असमय मरे थे, तब भी जीवन जीना मैंने सीखा था। हाथ फैलाकर सहानुभूति की भीख नहीं मांगी थी मैंने—लोगों से। जीवन है तो मृत्यु भी है। उस पर क्या बार-बार सोचना। क्या सब अमरौती खाकर आये हैं। मृत्यु तो शाश्वत है, लेकिन बहादुरी नहीं। बहादुर बनना कला है और मरना प्राकृतिक। मैं नहीं चाहती कि मेरी कोख से जन्मा पुत्र मेरा ख्याल कर कायर बने। बहादुर एक बार मर कर भी जीता है और कायर हर बार जीकर भी मरता है।" ऐसा कहकर उसकी मां रो पड़ी। पर वह इतना साहस भी नहीं जुटा पा रहा था कि उठकर मां के आंसू पोंछ ले। उसे बार-बार महसूस होने लगा था कि उसके हाथ किसी कायर के हाथ हैं। ये हाथ क्या मां के आंसू पोंछ सकेंगे।

*   *   *

दो दिन बाद उसे फिर परीक्षा देने जाना था। गेट के दृश्य में किसी परिवर्तन की आशा करना बेकार था। लेकिन बीते दिनों की तुलना में आज उसकी मनःस्थिति बिल्कुल अलग थी। गेट पर पहुंचकर उसने पाया कि मुट्ठी भर छात्र आवाज बुलन्द कर रहे हैं और मेजारिटी मूक दर्शक के समान वातावरण में सर्वेहित उन आवाजों से बेखबर आपसी चर्चा में लीन है। उसके अन्दर बहने वाला आक्रोश का लावा उसकी मां की फटकार की ऊष्मा से अब तक

भिघर चुका था। सिर्फ उसके प्रस्फुटन की देर थी। उसके ऊपर लिपटा कायरता का चोला अब वहाँ पर रह पाने का सामर्थ्य नहीं जुटा पा रहा था। कुछ देर तक गेट पर होने वाली बुलन्द आवाजें उसे डराती रहीं लेकिन फिर कुछ सोचकर वह जोर से चिल्ला उठा—"रुको। मैं कुछ कहना चाहता हूँ।"

उसके वे साथी उसकी मरियल सी आवाज का तेज सुनकर क्षणमात्र को सहम से गये लेकिन फिर वे सम्भल गये। उन्हें विश्वास था कि वह उनका साथ देगा क्योंकि वे उसकी प्रतिभा से प्रेरित थे। चार-पांच छात्र एक साथ बोल उठे—"आओ युवक, तुम्हारी आवाज आज हमें सुननी है।" उन्हें पूर्ण विश्वास था कि उसकी प्रतिभाजन्य आवाज उन्हें समाधान दिलाने में अवश्य सहयोग करेगी। लेकिन यह उनका भ्रम था। गेट के ऊपर चढ़कर उसने एक नजर सब पर डाली और फिर माँ का स्मरण करके साहस बटोरने का प्रयत्न किया। आज जब वह परीक्षा देने घर से निकला था तब माँ ने उसके सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद नहीं दिया था। उसकी माँ करीब-करीब मौन हो गई थी। आशीर्वाद न मिलने का उसे काफी दुःख था। कुछ सोचकर उसने भीड़ को सम्बोधित किया—

"साथियो, परीक्षा के ऊहापोह की यह स्थिति कब तक चलती रहेगी। कुछ मुट्ठी भर साथियों की खातिर यह मेजारिटी आखिर कब तक गेट पर इन्तजार करती रहेगी कि गेट खुले और सब परीक्षा देने अन्दर आयें। मैं देख रहा हूँ कि यहाँ पर कायरों की एक फौज इकट्ठी हो गई है। जब यह फौज अपने अधिकारों के लिये नहीं लड़ सकती है तब देश के लिये क्या लड़ेगी। जो साथी परीक्षा देना चाहते हैं वे मेरे एक ओर आ जायें। और परीक्षा न देने वाले भाग जायें। कायरों की फौज अब बहादुरों की फौज है और इससे प्रस्फुटित होने वाला लावा उन सबको जला देगा जो उसके भविष्य में अवरोध हैं। आओ साथियो, इकट्ठे हो जाओ। क्यों खड़े हो चुप क्या कायर हो? नामर्द हो? लानत है तुम्हारे पुरुषार्थ और यौवन पर

जिन्दगी जीना चाहते हो तो मरने में मत डरो और जीते जी मरना चाहते हो तो दूर खड़े रहो।"

"त्र्यम्बक, तुमको आज क्या हो गया है ? क्या तू आज बहक गया है।" उसके 'वे' साथी उसके पास आकर बोले।

"हाँ, आज मैं बहक गया हूँ। मत आओ मेरे पास अन्यथा कुछ भी हो सकता है।"

"साले गद्दारी करता है। मारो पत्थर इसे।" वे सब एक साथ बोल उठे और पत्थर उठाकर उसे मारने लगे। पूरी मेजारिटी अभी खामोश थी–गतिविहीन–अविचलित–मानो किसी बीमार ने नजदीक आते यमराज को देख लिया हो। अचानक एक पत्थर उसकी कनपटी पर लगा और वह नीचे गिर गया। उसके नीचे गिरते ही उसके वे बिगड़ैल साथी चिल्ला उठे—"मार डालो गद्दार को।" और वे साथी उसकी ओर दौड़ पड़े। लेकिन एक-जोर का धमाका हुआ। मेजारिटी में प्राणों का प्रस्फुटन हो गया था। उसमें अप्रत्याशित जीवतता आ गई थी। पूरी मेजारिटी चिल्ला उठी–"रुक जाओ–आगे मत बढ़ना–हाथ तोड़ डालेंगे।" उनकी गति में अचानक अवरोध लग गया और जैसे ही उनने खा जाने वाली नजरों से मेजारिटी को देखा, तो पूरी मेजारिटी चिल्ला पड़ी— 'हम परीक्षा देंगे। देखें कौन रोकता है।" अपनी ओर बढ़ती मेजारिटी के तेवर को समझकर वे बिगड़ैल श्वान भाग खड़े हुए। चारों ओर से एक ही आवाज आ रही थी—"त्र्यम्बक जिन्दाबाद—त्र्यम्बक जिन्दाबाद।" और वह बेहोश सा गेट के पास पड़ा उस आवाज को सुनता कनपटी [redacted] बहते खून को पोंछ रहा था। उसे विश्वास हो गया था कि घर पहुँचते ही उसकी माँ का आशीर्वाद वाला हाथ अवश्य ही उसके सिर पर फिरेगा।

और रामसेवक मर गया

जिस प्रकार अल्सेशियन कुत्ते की जात उसके बुलंदावर शरीर, उसके भौंकने वाले थूथने और उसके रंग से पहिचानी जाती है, अभियन्ता मिश्रा की जात भी उनके कुछ विशिष्ट शौकों के कारण जगविख्यात है। मसलन वे पपलू को नौकरी से ज्यादा अहमियत देते हैं, अल्सेशियन कुतिया पालते हैं और रामसेवक को एक लंबे अरसे से-तकरीबन बीस वर्षों से, जब उनकी नौकरी एक सहायक अभियंता जैसे अदने से पद से चालू हुई थी, अपने पास ही रखे हुये हैं। इन बीस वर्षों में मिश्रा ने क्या-क्या नहीं पाया, क्या-क्या नहीं भोगा और क्या-क्या पदोन्नतियां नहीं पाईं लेकिन रामसेवक तभी से एक आशा और मुगालते में अपने जीवन के सपने बुनता मिश्रा के साथ चिपका रहा। मिश्रा न सिर्फ ठेकेदारों से पैसे उगाहने में माहिर था, राजनीति में प्रभाव रखने वाले लोगों को पटाने में अति पटु था बल्कि वह कुछ ऐसे सपने भी बेचा करता था जो दूसरों को जिंदा रहने का बहाना दे दिया करते थे। पैसे उगाहने के कई ऐसे ही सपने उसने अपने मातहत इंजीनियरों को कई वर्ष पहिले बेचे थे। उन सब-इंजीनियरों ने उन सपनों को खरीदा था लेकिन उन सपनों का प्रतिफल कुछ ऐसा हुआ कि वे सारे सब इंजीनियर एक्वायरी में फंस गये और फाँसी का फंदा देखकर डिपार्टमेंट छोड़कर भाग खड़े हुये। सिंचाई विभाग के रिकार्डों में से उनका नामोनिशान मिट गया। लेकिन मिश्रा जीवट था। उसे सपनों के क्रय की शक्ति का पूरा-पूरा अंदाज था। उसे पता था-इंसान मुगालते में जीने का आदी है। बस इसी का लाभ उठाकर वह सपने बेचता था और लोग उससे सपने खरीद-कर स्वयं को धन्य और कृतज्ञ समझते थे।

उसके सपने के खरीददार उससे जुड़ते थे, कुछ समय बिताते थे और समय रहते सारी स्थितियां को जाँच-परख वहीं और चले जाते थे। लेकिन रामसेवक

उसके सपनों का ऐसा पुख्ता खरीददार निकला कि वह आज भी मिश्रा के बेचे सपने खरीदता आ रहा है और मिश्रा भी उसे सपने बेचता आ रहा है। सारा क्रम अनवरत रूप से चल रहा है। लेकिन रामसेवक भीतर ही भीतर कुछ ऐसा टूटता जा रहा है जिसे फिर न हीं तो मिश्रा जोड़ सकेगा और न ही कोई और। यदि रामसेवक को उसके अंतस की टूटन से कोई बचा सकता है तो सिर्फ दो बातें—कि या तो मिश्रा सुबुद्धि पाकर रामसेवक को सपने बेचना बंद कर दे या फिर मौत अपने विशाल डैने फैलाकर उसे समेट ले। मिश्रा सपने बेचना बंद कर नहीं सकता है। कहीं कुत्ते की पूंछ भी सीधी हुई है-फिर चाहे वह अल्सेशियन ही क्यों ना हो। ऐसी स्थिति में रामसेवक दूसरे विकल्प का ही सहारा ले सकता है।

चम्बल की घाटियों वाले क्षेत्र में मिश्रा की सबसे पहली नियुक्ति हुई थी—राणाप्रताप सागर बांध के निर्माण कार्य के लिये—सहायक अभियन्ता के पद पर। उसी समय आठवीं पास रामसेवक उसके पास नौकरी के लिये आया था। पास के ही गांव का रहने वाला था। मिश्रा चाहता तो आसानी से उसे चपरासी बना देता लेकिन फील्ड में रहने वाले इंजीनियरों का एक विशेष अहम् होता है। चपरासी बनाकर मिश्रा को क्या मिलता। कुछ समय के लिये वाहवाही। उसके बाद मिश्रा का अहसान रामसेवक की स्मृति से धुल जाता। और फिर फील्ड में चपरासी का एपाइंटमेन्ट कराने में प्रतिष्ठा नहीं बनती है। वहाँ तो इस बात में प्रतिष्ठा और रूतबा आंका जाता है कि मस्टर रोल पर लिये मजदूरों में से कितने साहब के घर काम कर रहे हैं। मिश्रा इंजीनियर की प्रतिष्ठा बर-करार रखने का कायल था। उसने अंतस् में उठ आई सारी मानवेतर भावनाओं को दबाकर रामसेवक को मस्टर पर लगवा दिया था। लेकिन रामसेवक का यह भाग्य था कि उसे कभी साइट पर नहीं जाना पड़ा। मस्टर में नाम होने के बाद भी मिश्रा के घर की चहारदीवारी उसका कार्यक्षेत्र बन गई थी। मिश्रा का विवाह उसी वर्ष हुआ था। एम० डी० ओ० की बीवी कैसे अकेले घर का सारा काम कर सकती थी। उसकी सेवा के लिये मिश्रा ने रामसेवक को तैनात कर दिया था।

रामसेवक उस समय मात्र अठ्ठारह वर्ष का नौजवान था। पशियो मे अद्भुत ताकत थी। चेहरे पर पौरुष के चिन्ह अकुरित होने के लिए लालायित थे। गाव मे थोडी जमीन थी जिसस वह चाहता तो ताजि दगी अपना और भविष्य मे बनने वाले परिवार का पट पाल सकता था। लेकिन उसकी अध-शिक्षा उसे गाव के बाहर खीच लाई मजदूरी कराने के लिये। घर मे बाप स थोडी सी कहा-सुनी क्या हुई, रामसेवक न पलायन कर दिया। राना प्रताप सागर उस समय काफी मजदूरो को जज्ब करने की ताकत रखता था। मजदूरा का श्रम म मैदान चम्बल के प्रवाह को रोकने मे गुम हो गया। राना प्रताप सागर ने उसको रोटी तो अवश्य दी लेकिन उनकी चिथडेहाल जि दगी म कोइ परिवतन नही लाया। रोज कुआ खोदकर पानी पीन वाले कितना जल सग्रह कर सकते है। मस्टरा पर मजदूरो की सख्या बढन लगी थी लेकिन साइट पर उतने मजदूर कभी नही दिखे। कुछ साहब और उनकी अहम् प्रवुद्ध बीबिया के घरो के पालतू कुत्त बन गये और शेप सिफ मस्टरो पर ही जीवित रहे। मस्टरा से सभी शासकीय कमचारियो न अपन सूने घरो को भरना प्रारम्भ कर दिया। दिन-रात अपन बलिष्ठ शरीर स प्रस्वेद गिरान वाले मजदूर इससे ज्यादा बढ नही पाये। समय की मार, कम रोजी व अनियत्रित परिवार ने उनको असमय ही बुढापे की दहलीज पर ढकल दिया था।

साइट की थकाऊ जि दगी न कई अभियताओ से उनकी जि दगी से काफी मधुरतम क्षण भी छीने थे लेकिन घर मे आय वभव व नकद की आवक न उनको मानसिक सतुलन म दायर मे बाध रखा था। मिटटी, पत्थर, काक्रीट, पानी जैस पदार्थों क बीच रहकर मिश्रा न सपने बेचन का शौक विकसित किया था। पहले-पहल उसकी अंतरात्मा ने कुछ रोड लगाय लेकिन उसके जीवत विवेक ने उसे सब कुछ सिलसिलेवार समझने का अवसर दिया था। उसने जीवन जीने की एक रूप-रेखा बनाई और उसी के अनुसार सपनो को सजोया और अपने सपने साकार करने के लिये कुछ सपने भी बेचने लगा। उसम सभी प्रसन्न रहते थे। कारण कि हर समस्या की रामबाण औषधि उसके पास रहती थी।

* * *

रामसेवक ने भी एक सपना मिश्रा से खरीदा था। उन्हें मिश्रा ने बताए रखा था—"काम पसंद आयेगा, तो टाइम कीपर या चपरासी बनवा दूँगा। छः चाँदी ही चाँदी होगी तुम्हारी। और यह सिंचाई विभाग है। काश्तकारों को जमीनें तो बगैर पानी सींच ही देगा। हम सबके घर भी बाँध अपने पानी से सींच देगा। करोड़ों का काम है लोग लाखों कमा लेंगे।—तुम देखना

तुम सेवा किये जाओ। बाँध के रुके पानी में से एक नाली तुम्हारे लिए अवश्य निकलवा दूँगा। यदि तुम ठीक होते, तो मजा आ जाता। मैं अंडर में क्लर्की दिलवा देता फिर ठाठ। वहाँ से उठ वहीं से सुबह समझनी चाहिए।'

रामसेवक की अल्प-बुद्धि ने मिश्रा का कथन मान लिया। जैसे-जैसे उम्र बढ़ी, रामसेवक का सेवा भाव परिमार्जित होने लगा। अब उसे कुछ बताने और समझाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। मस्टर में तनखा कम मिलती थी तो क्या हो गया। मिश्रा ने अपने घर के आउट हाउस में उसे रहने के लिए खोली दे दी थी। उसकी खोली के बगल में ही मिश्रा की अल्सेशियन कुतिया की खोली भी थी जिसके रख-रखाव का उत्तरदायित्व भी रामसेवक का था। मिश्राइन दिन में एक बार अवश्य उस कुतिया की खोली का मुआइना करती। कुछ कमी रहती तो रामसेवक को बहिश्राव झिड़कियाँ सुननी पड़तीं। लेकिन मिश्रा और मिश्राइन दोनों को कभी कुतिया की बगल वाली खोली में झाँकने का अवसर न मिला। रामसेवक की दिली ख्वाहिश थी कि मालकिन एक बार उसके दड़बे का मुआइना भी कर लें, लेकिन ख्वाहिश ख्वाहिश बनी रह गई।

मिश्रा ने एक बार एक कुर्सी की टाँग टूटने पर उसे रामसेवक को दे दिया था। रामसेवक ने ईंटों पर ईंटें रखकर कुर्सी की चौथी टाँग बना ली थी। यदा-कदा वह उस कुर्सी पर बैठकर बीड़ी का कश उसी स्टाइल में लेता जिस स्टाइल में मिश्रा अपना विदेशी सिगार जिसे शायद किसी ठेकेदार ने उसे दिया था पीता था। मिश्रा से स्वप्न खरीदकर रामसेवक कभी-कभी दिवा-स्वप्न भी देखता। उसे लगता एक दिन वह सिंचाई विभाग का परमानेंट आदमी बन जायेगा। तब उसके गाँव में उसकी इज्जत काफी बढ़ जायगी।

ऐसे ही दिवास्वप्न लिए वह एक बाप के बुलाने पर गाव गया था। उसकी इच्छा तो नही थी लेकिन हवा बदलने के ख्याल से वह वहा चला गया। बाप ने उसकी शादी की बात कहीं चला रखी थी। घर पहुँचकर रामसेवक ने शादी की हामी भर दी। दुल्हन ब्याह कर जब वह मिश्रा के घर पहुँचा, तो मिश्रा ने अपना एक टूटा पलग देकर उसका स्वागत किया। दोनो मिश्रा के बड़प्पन से गद-गद हो गये।

समय गुजरता गया। मिश्रा का ट्रांसफर कई जगह हुआ लेकिन रामसवक को वह अपने साथ लिए चला। जिस शहर मे मिश्रा जाता वहीं के दफ्तर मे राम-सेवक का नाम दर्ज हो जाता। लोग रामसवक से कहते, "क्या इस घामड के साथ घूम रहा है। पूरी जिन्दगी सेवा करगा तो भी कुछ न मिलेगा।" लेकिन वह सुनी बातें चुपचाप सुनकर हस देता। हर बार मिश्रा को नया और बड़ा बंगला मिलता लेकिन रामसवक की किस्मत मे हमेशा एक ही कमरा पड़ता जिसके बगल मे मिश्रा की प्रिय कुतिया अवश्य रहती। इसी दौरान रामसेवक का बच्चा हुआ। रामसवक ने बहुत साहस करके मिश्रा से एक और कमरे की माग की लेकिन उसकी प्रार्थना रेगिस्तान की अथाह रेत-राशि मे गिरी एक बूद के समान प्रभावहीन रही। मिश्रा चाहता तो एक कमरा आसानी से दे सकता था। उसकी कुतिया का दड़बा कोई भी सब-इजीनियर बड़ी आसानी से बनवा देता लेकिन मिश्राइन आदमी की नस पकडना जानती थी। उसने स्पष्ट कहा—"धूल को लात मारो तो सिर पर चढती है। इन नौकरो को ज्यादा सुख-सुविधाये दी तो समझिये वे काम कम भोग ज्यादा करेंगे।
हमे नौकर की आवश्यकता है। परोपकार करने का ठेका हमने नही लिया है।" मिश्रा मिश्राइन की दलीलें सुनकर शांत हो गया। रामसवक को उसी दड़बे मे घुस जाना पड़ा।

छोटा सा कमरा कुतिया की बदबू और अति अल्प वतन ने रामसवक के दाम्पत्य को तोड़ने का प्रयास किया। यदा-कदा वहा सुनी हो जाती लेकिन बच्चे का रुदन उस टूटते दाम्पत्य को जोड़ देता। रुदन से रामसवक की पत्नी बच्चे को संभालने लगती और रामसवक उस तीन टाग वाली कुर्सी पर बैठकर स्टाइल

से थोड़ी पीने लगता। रामसेवक की पत्नी पढ़ी-लिखी नहीं थी लेकिन दुनियादारी को समझने की शक्ति भगवान ने कूट-कूट कर भर दी थी। मिश्राइन की बातों की भनक उसे लग गई थी और रामसेवक का भविष्य उसने क्षण भर में आंक लिया था लेकिन ग्रामीण परिवेश का प्रभाव था। वह रामसेवक को सलाह देना उचित नहीं समझती थी। कहीं सलाह दी और दाम्पत्य अशान्ति आ गई तो क्या फायदा? जब उसका आक्रोश उभरता तो वह बच्चे को रोता छोड़ देती। लेकिन फिर भयाक्रांत होकर उसे उठा लेती और अपने बलिष्ठ स्तनों से इस प्रकार चिपका लेती जैसे कोई उसे छुड़ाने आ रहा हो।

लेकिन आखिर वह भी कब तक मुंह सिये रहती। भूख की तड़प, परिवार की कल्याण-आकांक्षा, धन की असमानता—समाज में बड़े-बड़े आन्दोलन करा देती हैं। रामसेवक की पत्नी ने विवाह के पहिले भी सुन रखा था कि रामसेवक परमानेन्ट नौकरी पर है पांच-छै सौ कमा लेता है आदि-आदि। लेकिन उस खोली में रहकर वह सब बातें समझ चुकी थी। वह चाहती थी रामसेवक डेढ़ सौ रुपल्ली की उस मस्टरगिरी को छोड़कर गांव की काश्तकारी संभाले जहां खुली हवा में रहकर दो जून की रोटी निकालना कठिन नहीं था।

इसी समय मिश्रा का प्रमोशन हुआ और उसे नई जगह ट्रांसफर कर दिया गया। मिश्रा जाते-जाते रामसेवक को परमानेन्ट करना चाहता था। रामसेवक की चाकरी का इनाम देकर वह अपने पापों के खाते में पुण्य जोड़कर एक पाप कम करना चाहता था। उसने रामसेवक को बुलाकर अपना मंतव्य जता दिया। रामसेवक का मन पंख लगाकर उड़ने लगा। उसने इसकी सूचना अपनी पत्नी को दी जो इस खबर को सुनकर थोड़ी देर के लिये उस खोली का दमघोंटू परिवेश भूल गई। वह मिश्राइन का धन्यवाद करने पहुँची। मिश्राइन ने मिश्रा के मंतव्य को जानकर औपचारिक खुशी जाहिर की। लेकिन अन्दर ही अन्दर वह मिश्रा पर नाराज हो गई। रामसेवक की पत्नी को वापिस भेजकर वह मिश्रा का इन्तजार करने लगी।

* * *

मिश्रा आफिस की कार्यवाहियां निपटाकर काफी रात लेट घर पहुँचा।

खाना खाकर दोनों लेट गये। मिश्राइन मिश्रा के अधपके बालों में अंगुलियाँ डाल कर सहलाने लगीं। मिश्रा को मिश्राइन के व्यवहार पर आश्चर्य हो रहा था। उसने धीरे से पूछा, "क्यों डार्लिंग! क्या बात है? आज बड़ा प्यार आ रहा है—क्या यह प्रमोशन का पुरस्कार है?"

"प्रमोशन से कौन खुश नहीं होगा। लेकिन एक बात और है।"

"क्या?"

"आप बड़े दरियादिल भी हो गये हैं।"

"कैसे?"

"सुना है आप रामसेवक को परमानेन्ट करने जा रहे हैं?"

"तो इसमें कौन सी नई बात है। कइयों को तो पक्की नौकरी दी है। वही बेचारा क्या सफर करे।"

"वो तो ठीक है—लोगों को परमानेन्ट करना ही चाहिये नहीं तो डिपार्टमेंट कैसे चलेगा। लेकिन रामसेवक जैसा नौकर नहीं मिलेगा। बहुत ईमानदार और जीवट आदमी है।"

"अरे डार्लिंग! इस सिंचाई विभाग में नौकरों की क्या कमी। जहाँ जायेंगे वहीं पर मस्टर पर किसी को लगा लेंगे। लेकिन तुम्हें उसके परमानेन्ट होने से क्यों दुःख है?"

"देखिये जी! मैं पते की बात कहती हूँ—रामसेवक जैसा सेवक मिलना बड़ा ही कठिन है। आदमी-आदमी में फर्क होता है। मैं चाहती हूँ कि रामसेवक हमारे साथ ही रहे। और इसका एक ही तरीका है कि आप उसे परमानेन्ट न करें। अपने साथ ले चलें। वहीं पर फिर मस्टर पर लगा देंगे। फिर आप चाहें तो वहीं पर उसे परमानेन्ट कर देना।"

मिश्रा मिश्राइन की बात सुनकर चुप रहा पर मिश्राइन की बात चालू रही। उसने फिर बोला—

"आज के जमाने में मजदूर अपने अधिकारों के प्रति सचेत होते जा रहे हैं। वहाँ नया आदमी टैम्प मिला तो निभाना मुश्किल हो जायगा। और

फिर रामसेवक कौन सा भूखा मरा जा रहा है। सुन रहे हैं न आप मेरी बात ?"

'हां-हां सुन रहा हूँ और समझ भी रहा हूँ।"

मिश्राइन अब चुप हो चुकी थी। मिश्रा का व्यवसायी मस्तिष्क गतिमान हो चुका था। उसे मिश्राईन की बात में तथ्य नजर आया। ईमानदार और भक्त सेवक मिलना लाख रुपये की लाटरी खुल जाने के बराबर है। मिश्रा ने मन ही मन निर्णय लिया और मिश्राइन को आगोश में समेटकर सो गया।

* * *

सुबह-सुबह मिश्रा ने रामसेवक को बुलाकर कहा, "रामसेवक तुम मेरे साथ चलोगे। नई जगह है। वहाँ पर तुमको परमानेन्ट कर दूंगा। यहाँ पर मेरे न रहने से तुमको दिक्कत हो सकती है। अब नये साहब का क्या भरोसा ? कहीं तुम उनके साथ न निभ पाये तो सुनकर मुझे बड़ा दुःख होगा।

मिश्रा का निर्णय सुनकर रामसेवक की कलियाँ उछलता मन क्षण भर में बुझ गया। उसका प्रांजल मन मिश्रा का षडयंत्र न भांप सका। वह अभी भी मिश्रा के वचन में दिवास्वप्न देख रहा था। मिश्रा ने उसे फिर स्वप्न बेच दिया था। रामसेवक की क्रय सामर्थ्य खत्म हो चुकी थी। अपनी उदासीन जिन्दगी में झांककर उसने उस स्वप्न को खरीदने का सामर्थ्य तलाशा। बच्चे के भविष्य को निहारकर उसने अनवरत रूप में क्षीण होती जिन्दगी से इस बार सामर्थ्य उधार माँगा। उसने मन ही मन एक बार और मिश्रा के साथ रहकर जिन्दगी दाव पर लगाने का जोखिम लिया।

* * *

रामसेवक की पत्नी मिश्रा के निर्णय को सुनकर बिफर गई। मिश्राइन और मिश्रा—दोनों को भला-बुरा कहा। लेकिन सीधे जाकर लड़ने की शक्ति उसमें भी नहीं थी। मौका देखकर उसने मिश्रा की अलसेशियन कुतिया को पास बुलाया और चूल्हे की जलती ठूंठ उसके थुथने में घुसेड़ दी। कुतिया के के की आवाज के साथ भाग खड़ी हुई। रामसेवक की पत्नी को इस कृत्य में थोड़ी मानसिक दिलासा मिली।

उसने बच्चे को उठाकर चुप कराया और कुछ सोचकर रामसेवक से बोला "सुनो ! अब मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगी। एक खोली में रहते मेरा मन नहीं भरता है। न खुली हवा और न ही कोई पक्की नौकरी। तुम्हारा बच्चा इन सबके बीच रहकर कुछ न बन सकेगा। मेरा विचार है तुम भी मिश्रा की चाकरी छोड़ो। गाव चलते हैं। मिल-जुल कर खेती करेंगे तो भगवान भी कुछ दयावान हो जायेगा। तुम्हारे इस मिश्रा पर तो अब मुझे कतई भरोसा नहीं रह गया। जो आदमी अपनी जुबान का पक्का नहीं, उससे क्या आशा करना।

इतना कहकर रामसेवक की पत्नी रामसेवक की आंखों में झांकने लगी। रामसेवक को लगा वह भरे बाजार में नंगा हो गया है।

कुछ सोच समझकर वह पत्नी से बोला—"तुम कुछ दिनों को गाव चली जाओ। मैं मिश्रा साब के साथ जाकर एक बार और किस्मत आजमाना चाहता हूँ। नहीं तो फिर तुम जैसा कहती हो वैसा ही करूँगा।"

रामसेवक की पत्नी बच्चे को लेकर गांव चली गई और रामसेवक मिश्रा के साथ नये स्थान को।

* * *

समय तीव्र गति से आगे बढ़ गया। रामसेवक न तो मिश्रा का साथ छोड़ पाया और न ही परमानेंट हो पाया। एक-दो बार गांव भी आया लेकिन वहां भी उसका मन न लगा। मिश्रा के सपने उसे वापिस बुला लेते। मिश्रा के साथ बीस वर्ष रहने का पुरस्कार उसे यों मिला कि आधापेट भोजन, आर्थिक तंगी और बंद कमरे की घुटनभरी हवा ने उसमें राजयक्ष्मा के बीज अंकुरित कर दिये। राजयक्ष्मा तो उसे शायद कई वर्ष पहिले ही हो गया था लेकिन जब तकलीफ ज्यादा बढ़ी तो डाक्टर से दिखाने पर पता चला कि वह मृत्यु की कगार पर पहुँच गया है। साल-छः माह भर का मेहमान है। लेकिन इस लंबे अंतराल में मिश्रा सहायक अभियंता से मुख्य अभियन्ता के पद पर पदोन्नत हो गया था।

जब मिश्राइन को रामसेवक की बीमारी का पता चला तो उसने नाक-भौं सिकोड़ लीं। घर का काम करना बंद कर दिया और मिश्रा से उसकी

छुट्टी कर देने की सोची। यूनियन के डर से मिश्रा रामसेवक को हाथ नहीं लगाना चाहता था। और फिर अखबार वाले भी तो ऐसे विचित्र किस्सा सूंघते रहते हैं। उसने रामसेवक की पत्नी को बुलाकर रामसेवक को गांव ले जाने की सलाह दी। साथ-साथ हजार-पांच सौ रुपए भी दिये। रामसेवक अपनी पत्नी के साथ गांव चला गया।

*   *   *

इन पांच वर्षों में गांव का वातावरण काफी कुछ बदल चुका था। शहरी सभ्यता ने अपने पैने दांत ग्रामीण जन मानस में चुभोना आरम्भ कर दिये थे। जिस जमीन में रामसेवक पांच बरस पहले दो जून की रोटियां उपजा सकता था वह आज एक जून का भोजन भी मुहैया नहीं करा पा रही थी। हर ग्रामीण के अंतस में शहर की ओर भागने की ललक जन्म ले चुकी थी। सभी को एक उपयुक्त अवसर की तलाश थी। गांव की मिट्टी की सोंधी सुगंध अब उनके जेहन पर नशीला प्रभाव नहीं डाल पा रही थी।

गांव-वापसी पर रामसेवक को खास खुशी नहीं हुई। खुली हवा भी उसके मरियल शरीर में जिजीविषा संचारित नहीं कर पा रही थी। उसे रह-रहकर मिश्रा की याद आती। कुछ समय तक मिश्रा की स्मृति में वह भविष्य के दिवा-स्वप्न देखता, लेकिन कुछ ही देर बाद दिवा-स्वप्न विषाद और संत्रास में बदल जाते। सूनी और उदास आंखें वह झोपड़ी की सांकल पर टिका देता और फिर जोर से चिल्लाता, कहता— 'मिश्रा! तूने मुझे कहीं का नहीं रखा है। मेरा यह हाल तेरी ही देन है। भगवान के घर देर है अंधेर नहीं है। तुझे तेरे किये की सजा जरूर मिलेगी। मरने के बाद भी तेरा पीछा नहीं छोड़ूंगा।' चिल्लाने के साथ ही उसकी शारीरिक शक्ति क्षय हो जाती और वह निढाल होकर चुपचाप पड़ लेट जाता—मानो एक अनासक्त भाव उसमें पैदा हो गया हो अपनी उकताई जिन्दगी को जीने के लिये।

*   *   *

रामसेवक का लड़का किशोरावस्था की दहलीज पार कर गया था। शहर जाने की आकांक्षा उसके मन में भी जन्म ले चुकी थी। वह रामसेवक के पास बैठकर उसके पैर दबाता और धीरे-धीरे शहर और कालोनियों के बारे में पूछता

रहता। रामसेवक उस सारी बात उसी प्रकार बताता मानो कोई बुजुर्ग अपनी नन्ही बिटिया को कोलम्बस की अमेरिका यात्रा का किस्सा सुना रहा हो। रामसेवक का लड़का आँखें फाड़-फाड़कर रामसेवक की ओर देखता और मन ही मन शहर जाने के सपने बुनता रहता। रामसेवक अनजाने में अपने लड़के में अवश्य ही शहर जाने की ललक प्रज्वलित कर रहा था। उसे तनिक भी अहसास नहीं हुआ कि उसके द्वारा अंकुरित बीज बड़े पौधे में विकसित हो जायेंगे। लड़के की सेवा चलती रही और रामसेवक आग को घी देता रहा।

एक दिन घर लौटते उसके लड़के ने पूछा, "बापू! क्या मुझे मिश्रा के पास नौकरी मिल सकती है?" रामसेवक चुप रहा। लड़के ने फिर पूछा, "बापू आप देख तो रहे हैं कि गाँव में अब क्या बचा है। मेहनत कितनी भी करो, दो टाइम की रोटी भी नहीं मिलती। सुना है शहर में मेहनत करके रोटी कमाना ज्यादा कठिन नहीं है।"

रामसेवक बोला, "शहर में रोटी कमाना कठिन तो नहीं है। लेकिन तू मिश्रा के पास क्या पाना चाहता है? क्या मस्टर पर नौकरी चाहता है?" "मैं नहीं जानता कि मस्टर क्या होता है। मुझे तो नौकरी चाहिए, जहाँ भी मिले। मिश्रा आपको जानता है इसलिए नौकरी मिलना कठिन नहीं होगा।"

"लेकिन तुम मिश्रा के पास नौकरी के लिए मत जाना। उस सिंचाई विभाग के सभी अधिकारी मिश्रा के ही समान हैं। पूरी जिन्दगी मस्टर रोल पर जिन्दा रखकर घर का सारा काम करायेंगे। और फिर तेरी क्या हालत होगी, यह तू मुझे देखकर समझ सकता है।"

रामसेवक के लड़के ने घर दरवाजा बंद कर दिया और चुपचाप बाहर चला गया।

* * *

आज दिन खटिया पर पड़े रामसेवक को उसके लड़के ने सूचना दी कि वह शहर जाने की तैयारी कर रहा है। मिश्रा का पत्र भी आ गया है। रामसेवक के शरीर में बचा-खुचा खून उबल गया। चिल्लाकर बोला— 'सुना मत उस हरामी के लिए काम करो। बाप का कहा नहीं मानता।' रामसेवक दो

तीन बार चिल्लाया। चिल्लाते ही उसे जोर की खांसी आई। उसने खून की उल्टी कर दी। सांस उल्टी चलने लगी। बमुश्किल उसकी पत्नी उसे संभालकर खटिया पर लिटा पाई। खांसी की आवाज सुनकर बबुआ अंदर आ गया। वह चुपचाप रामसेवक की खाट के पैताने बैठकर रामसेवक के पैर सहलाने लगा। रामसेवक ने एक नजर उस पर डाली और फिर चिल्लाने को उद्यत हुआ। कृश-काय शरीर खांसी का वेग न संभाल सका। पुन: खून की उल्टी हुई और उसके शरीर की गति निढाल हो गई। सिर एक ओर ढलक गया। उसके लड़के को समझ में आ गया कि रामसेवक अब उसे फिर चलता-फिरता और बोलता नजर नहीं आयेगा। उसकी उदास आंखों से आंसू बड़ी कठिनाई से निकल पाये। रामसेवक की पत्नी दहाड़ मारकर रोने लगी। बबुआ उठा और रामसेवक के मुख की ओर मुड़कर वहीं बैठ गया। वह चुपचाप था। अपने किशोर हाथ उसने रामसेवक के बालों में घुमड़ दिये और सिर धीरे-धीरे सहलाने लगा। उसके अंतस् में आक्रोश चरमसीमा पर पहुँच चुका था। लेकिन कैसे वह उस आक्रोश से छुटकारा पाये। एक बार उसने रामसेवक की आंखों में झांकने का प्रयास किया और फिर धीरे से मन ही मन बुदबुदाया—"बापू ! कुछ दिन तो और रुक जाते। मैं आपको बताता कि मिश्रा में पक्की नौकरी कैसे ली जाती है। अब जमाना बदल चुका है। मैं बदले जमाने का प्रतीक हूँ। मिश्रा तो क्या उसका बाप भी मुझे पक्की नौकरी देगा। लेकिन तुमने बहुत जल्दी कर दी—निर्णय लेने में हमेशा की तरह।'

रामसेवक का लड़का चुपचाप बाप की लाश के पास से उठा और लकड़ियों का इंतजाम करने चल पड़ा।

बिखरे टुकड़ो का सलीब

नाशविले, टेनसी, यू० एस० ए०

आदरणीय मा,

चरण स्पर्श !

कल शाम को डाक में तुम्हारा पत्र मिला—बाबू की मौत का पैगाम लिये। क्षण भर के लिये स्तब्ध रह गया—यह समझकर कि शायद प्रवासी होने के कारण मैं सिर्फ पैगाम सुनने भर का हकदार हूँ। लिखा है केबिल किया था मिल गया होगा। लेकिन मुझे विश्वास है कि केबिल किया ही नही गया। शायद ज्यादा पैसा लग जाते। खैर बाबू की मौत का अफसोस रम्मू, सविता, बीना और मुकेश को न हो, लेकिन मुझे तो अवश्य है। उन लोगो ने बाबू के पास रहकर उनकी कमी की कल्पना न की हो और न ही यह कभी महसूस किया हो कि उनकी अनुपस्थिति घर में क्या परिवर्तन ला सकती है, लेकिन सैकड़ो मील पर बैठा मैं उनके सिसकने और कराहने की आवाज जरूर सुन रहा हूँ। जो आया है वह जरूर जायेगा। लेकिन उससे जुड़ी स्मृतियां हमेशा इसा को इस नश्वर ससार में जीने का बहाना दे दिया करती है। तुम्हारे पत्र ने बाबू की मौत की खबर देकर जो एक अनवरत रिक्तता पैदा कर दी है, वह मुझे शनै - शनै बाबू के साथ बीती जिन्दगी को महसूस कराने और समझाने के लिये बाध्य कर रही है। दिमाग पर पड़ा विस्मृति का कोहरा कुछ-कुछ साफ होता दिखाई दे रहा है

वैसे टेनिसी में घना कोहरा नही पड़ता है। टेनिसी नदी की घाटियो को देखकर हमेशा नर्मदा की याद आती है। लेकिन जीवन यहा इतना यान्त्रिक है कि कभी-कभार समझ में नही आता है कि इसान के जीवन का मकसद आखिर क्या है। आत्मीयता और प्रेम यहाँ पर दूरगामी स्वप्न के समान है। प्रेम यहा

पर महज एक औपचारिकता है और वहां मेरे अपने देश में—एक जीवन शैली और जीने का सोपान। यहां पर, मेरा ऐसा अनुभव रहा है कि जीवन का प्रारम्भ प्रेम से होता है लेकिन अन्त सिर्फ सन्त्रास, उदासीनता और थकेलेपन की मार से। लेकिन मेरे अपने देश में शायद स्थिति ऐसी न हो। हालात बदल गए हों, तो बात अलग है। वहां पर मरते-मरते हर व्यक्ति कई लोगों में कुछ ऐसा छोड़ जाता है कि नश्वर शरीर को छोड़ने के बाद भी उसकी उपस्थिति को विस्मृत नहीं होने दिया जाता है। देखो न मां! मैं भी इस समय ऐसी-वैसी फालतू बातें छेड़कर भरे हुये घावों को हरा कर रहा हूं।

काश मिलता तो पक्का मर्मस्पर्श कि बाबू के चेहरे का दर्शन अवश्य होता। एक ऐसा चेहरा जो मेरे यदा-कदा उदास होने वाले मन में जिजीविषा की स्फूर्ति पुनः संचारित कर देता। आज जब उनके इस ब्रह्मांड में विलय की सूचना मिली है तो मेरे बचपन से लेकर भारत छोड़ने तक के अन्तराल में उनके तब्दील होते चेहरे एक-एक कर सामने आ रहे हैं। कितना सुखद लग रहा है इस अतीत को कुरेदने में मां... लेकिन मां तुम शायद ही उसे कभी समझ सको। स्त्री कितनी भी संवेदनशील क्यों न रहे मोह का आवरण उसे एक दायरे से बाहर झांकने का अवसर नहीं देता है। प्रकृति ने यह वरदान सिर्फ पुरुषों को दिया है। मैं खुशनसीब हूं कि तुमने मुझे एक पुरुष के रूप में जन्म दिया।

अब चूंकि आज बाबू जी नहीं रहे हैं और मेरा भारत आना कोई माने नहीं रखता है इस पत्र के माध्यम से मैं कई ऐसे रहस्यों पर से पर्दा उठाना चाहूंगा जो तुम्हें चौंकाने वाले लगेंगे। अपना शोध पूरा करने के बाद मेरी क्षणिक भी इच्छा नहीं थी कि यहां पर रहूं। इस बाबत मैंने तुम्हें लिखा भी था। उस समय शायद मैंने इस बात का भी जिक्र किया था कि नौकरी मिलना मेरे लिये यहां पर खास कठिन नहीं है। तुमने स्पष्ट लिखा था कि यदि मैं चाहूं तो कुछ वर्ष अमेरिका में रहकर आर्थिक समृद्धि पा सकता हूं। तुमने यह भी लिखा था कि मेरे कमाये डालर घर की आर्थिक स्थिति में आश्चर्यजनक परिवर्तन

ला सकते हैं। मैं इन सारी बातों का भेद नहीं समझ सका था। शायद उस समय मेरी वय ही इस नासमझी के लिए जिम्मेदार थी।

तुम्हारे पत्र ने मुझे यहां पर कुछ समय और बिताने की प्रेरणा दी थी। लेकिन तुम्हारी यही प्रेरणा मेरे लिए नरक के द्वार की कुन्जी थी। एक बार जब उस नरक में घुसा तो फिर आज तक निकल नहीं पाया हूँ। आर्थिक सुविधायें अवश्य पैदा करती रहीं। और मैं चाहकर भी भारत वापिस आने का अवसर न निकाल सका। इसी दौरान शीला से मेरी मुलाकात हुई और हमने विवाह कर लिया। इस विवाह से सबसे ज्यादा नाराजगी तुमने ही की थी। शायद मेरे [illegible] प्रवासी होने का फायदा तुम ढेर सा दहेज और नकद लेकर न उठा पाई थी। बाबू ने एक अलग पत्र लिखकर मुझे और शीला को आशीर्वाद भेजे थे और एक दुबकी हुई सी इच्छा व्यक्त की थी कि समय रहते शीला को लेकर एक बार भारत अवश्य आऊं। उनकी इच्छा थी कि मरने के पहिले बहू का मुंह अवश्य देख लें। लेकिन इसके विपरीत तुम्हारा आक्रोश भरा पत्र मिला था। तुम्हारे पत्र को पढ़कर मुझे ऐसा लगा था कि तुम्हारी स्थिति तपते रेगिस्तान में सफर करते उस प्यासे यात्री के समान हो गई थी जो अचानक ही पानी पा लेता है लेकिन मुंह तक लाते-लाते पानी हाथ से छिटककर रेगिस्तान के निर्मम अदृश्य रेत-कणों में समा जाता है जहां से पुनः उसको पाना करीब-करीब असम्भव होता है। तुम्हारे अन्दर पिघलते लावे की तपिश मैं नासविल में रहकर भी महसूस कर सका था। इसे मैंने ईश्वर का आशीर्वाद माना था कि तुमने सारा पत्र हिन्दी में लिखा था। अन्यथा कहीं शीला उस पत्र को पाती तो तुम्हारे बारे में जो ऊंची-ऊंची बातें मैंने उसे बता रखी थीं वे क्षण भर में ध्वस्त हो जातीं और हम दोनों के दाम्पत्य में एक दरार बनना प्रारम्भ हो जाती।

मैंने शीला को हिन्दुस्तानियों की दरियादिली, उनके सहनशील स्वभाव, उनके एडजस्टमेंट की प्रवृत्ति, आदि के बारे में बता रखा था। कितना दुःख होता उसे यदि वह तुम्हारे पत्र को पढ़ पाती। परन्तु कई बार भाषा की विभिन्नता व्यक्तिगत सम्बन्धों को द्वन्द्व से बचा लेती है। बस शीला ने इतना पूछा था कि क्या लिखा है। मैंने चुपचाप कन्धे पर उसके हाथ रख उद्विग्न भावों को छिपाते

उससे कहा था—"मम्मा ने तुम्हें ढेर सा प्यार भेजा है।" उसने चुपचाप उसे स्वीकार कर लिया था। लेकिन तुम्हारे पत्र के उन मजमून ने मुझे जिस गहराई तक चोट पहुँचाई थी, उसका घाव अभी तक भरा नहीं है।

धीरे-धीरे तुम्हारे पत्र भी कम कटुता लिये होने लगे। मुझे तुम्हारे पत्रों की माइल्ड भाषा में किसी षड्यन्त्र या खतरे की भनक हमेशा दिखाई देती थी। हो सकता था कि यह मेरे मन का भ्रम रहा हो लेकिन आखिर सन्देह और शक के बीजारोपण का कुछ न कुछ आधार तो होता ही है। आधार के बिना कोई भी चीज जन्म नहीं लेती। तुम्हारे पत्रों की भाषा मुझे उन पौधों की याद दिलाया करती थी जो ऊपर तो कम उभर कर दिखते हैं लेकिन जमीन के अन्दर अपने सारे अस्तित्व को बनाये रखने के लिए जमीन को फोड़कर अन्दर घुसते ही जाते हैं। तुम्हें आलू बहुत पसन्द हैं। मेरी पंक्तियों का भाव समझने में कष्ट नहीं होगा।

जिन्दगी का प्रवाह आगे बढ़ता गया—पहाड़ी टेनिसी नदी के समान। कई व्यवधान सामने आये, घाटियों और पहाड़ियों के रूप में टेनिसी के सामने लेकिन वह उन्हें पार कर गई। टेनिसी वैली अथारिटी के नाम से बिजली कम्पनी टेनिसी के जल वेग का उपयोग कर बिजली पैदा करने लगी। टेनिसी भी अपने जल प्रवाह का भाग रोक-रोककर कुछ देने का यत्न करने लगी। यदि तुम महसूस करो तो टेनिसी और मेरे जीवन के बीच एक साम्य अवश्य ढूँढ सकोगी।

देश वापिस जाने की ललक तो मृतप्राय हो गई लेकिन एक कसक बाकी थी कि यदि मौका मिलेगा तो पत्नी को लेकर भारत भ्रमण के बहाने तुम सबसे मिला दूँगा। इस कसक के ही कारण बनारसी चाट की सुगन्ध नथुनों को उत्तेजित करने लगी थी। कलुआ पान वाले के चमकी वाले पान का स्वाद जुबान पर तैरने लगा था और न जाने क्या क्या स्मृति-पटल पर उभरकर पैरों के तलुओं में गुदगुदी मचाने लगे थे। ऐसा मौका मेरे हाथ आया भी था। लेकिन छी तुम्हारे अर्थ-मोह ने उसे जर-जर करके मुझे रुलाने वाली स्थिति में पहुँचा दिया था। शायद तुम उस अवसर को याद न कर पाओ क्योंकि मेरे पहिले के पत्रों में मेरे अन्तस में जन्म लेने वाली कुण्ठाओं निराशा, ललक और आक्रोश आदि किसी

का भी कोई जिक्र नही होता था। सारे पत्र महज सम्बन्धों की कडी जुडी रखने के लिये औपचारिक हुआ करते थे। वस्तुतः इस पत्र को मैं अपने सारे प्रयासों के बावजूद भी औपचारिक नही बना पा रहा हूं। आखिर गुब्बारे मे कब तक हवा भरी जा सकती है। कभी न कभी तो वह तेज विस्फोटक आवाज मे फूट ही जावेगा।

याद आया न मा, किस कारण से मैं तुम लोगो तक नही पहुँच पाया था। अतीत को कुरेदिये सब कुछ स्पष्ट हो जायेगा। सविता का विवाह होने वाला था। बाबू ने पत्र लिखा था कि शैली को लेकर कम से कम दस दिन पहिले पहुँच जाऊँ। सबसे मुलाकात हो जायेगी और शैली भी यहाँ की जीवन-चर्या का कुछ अंश समझ सकेगी। बाबू का पत्र पाकर मुझे उतनी ही खुशी हुई थी जितनी यहाँ पर आते वक्त हुई थी। मैंने अपना प्रोग्राम बाबू को पत्र लिखकर सूचित कर दिया था। तुम सबको भी प्रोग्राम का पता चल गया था। सविता ने भी पत्र डाला था कि मुझे वहां पाकर सब बहुत ही खुश हो जायेंगे। शैली बेहद खुश थी। बहुत सी प्रेजेन्टस उसने सबको देने के लिए खरीद ली थी। लेकिन उसी समय आये तुम्हारे पत्र ने हमारी सारी खुशियों को मसल दिया था। कितना खौफनाक था मां वह पत्र। कई दिन तक जेहन मे उसका प्रभाव उतर नही पाया था। याद आया न-क्या लिखा था तुमने? ठहरो मैं फाइल मे पत्र निकालकर अक्षरशः उसे उद्धृत करूँगा।

'परिमल आशीर्वाद तुम्हारे प्रोग्राम का पता चला बहुत खुशी हुई। तुम्हारी उपस्थिति निस्सन्देह खुशीदायक होगी। लेकिन मा होने की खातिर कुछ सुझाव देने का हक तो रखती हूँ। तुम इसे अन्यथा मत लेना। भारतीय परिवेश अब बिल्कुल बदल चुका है। परम्पराएं बदल चुकी है। लोगों की हवस भी बढ़ गई है। तुम्हारे यहाँ पर दोनो के साथ आने मे बीस-तीस हजार का खर्च तो हो ही जायेंगे। यदि तुम अपना आना कैंसिल करके इतना ही पैसा भेज दो तो सविता की शादी और भी अच्छे ढंग से हो सकेगी। तुम इसे अन्यथा मत लेना मजबूरी है। तुमसे काफी आशायें थी लेकिन तुमने स्वयं विवाह करके

उनके पूरे होने में अनुमान ही व्यक्त होने लगो रिया था। मेरे सारे सपने टूट-कर बिखर गये हैं। आप क्या ? उन्होंने न कभी पैसा कमाया और न ही मार्गी-ब्याह के लिये पैसा कमाया। सारा पैसा तुम लोगों की पढ़ाई में ही लगा दिया। बताओ। क्या-क्या कभी ऐसा होता है। पारम्परिक परम्पराओं में विवाह के लिये यहां शिक्षा से ज्यादा धन की आवश्यकता है। मैंने बाबा ने कि स्वतंत्रता के बाद यहां पर लोगों की हवस और आकांक्षायें भी स्वतंत्र हुई हैं। और फिर सविता तुम्हारे जैसी शादी करके बोझ से उऋण हो नहा कर सकती है। मुन्ना और बीना तो अभी बच्चे हैं। दुनियादारी क्या समझते हैं। तुम्हारे आने से वे खुश अवश्य होंगे लेकिन तुम कठिनाइयां समझ सकते हो। मुझे जो कहना था लिख दिया। बाकी सब तुम्हारे ऊपर है। हां बाबू को सब समझा दूंगी। विश्वास है वे कोई विवाद खड़ा नहीं करेंगे।

तुम्हारी माँ

मां। तुम्हारे इस पत्र के बाद कौन हिम्मत कर सकता है वहां पर आने की। तुम्हारी मजबूरियां मैं बखूबी समझ सकता हूं। लेकिन धन के ऊपर भी कुछ मानवतर अनुभूतियां होती हैं। यदि तुमने पता लगाने को लिखा होता, तो बात बन सकती थी। उस पर अलग से विचार किया जा सकता था। पर तुमने तो ब्याह का सारा खर्च ही मेरे यात्रा-व्यय में परख लिया था। वैसे लीली का अचानक कैंसिल हुए प्रोग्राम के कारण बड़ा ही दुःख हुआ था। मैंने उसे झूठ बता दिया कि किसी की उम्र के कारण सविता का ब्याह पोस्टपोन कर दिया गया है। जब फिर दुबारा आयेंगे, तो चलेंगे। उसने मेरे कथन पर पूर्णतः विश्वास कर लिया था। यदि उसे तुम्हारे पत्र का आशय समझ में आ जाता तो तुम्हारे बारे में वह क्या सोचती मैं नहीं बता सकता हूं।

इसके कुछ दिन बाद ही बाबू का पत्र आया था। उन्होंने लिखा था—सविता का ब्याह निपट गया है। तुम्हारी कमी अखरती रही। तुम्हारे भेजे पैसे से सुरेश ने एक नया चेतक ले लिया है और तुम्हारी माँ का बैंक बैलेंस थोड़ा और बढ़ गया है।

कितना दु [illegible]
हट व साव पा [illegible] । [illegible]
पुन पत्र भी [illegible] है [illegible]
अवश्य है—[illegible]
क लिय [illegible]
वा न होगा ।

[illegible] म उनका वा [illegible] तुलना म [illegible] करना है होगा । [illegible] पड रहा ह, तो [illegible] । [illegible] है बाहू-तेरह हजार म निकल [illegible] । [illegible] विचार कर [illegible] थाने का फैसला कर लिया [illegible] । [illegible] पैदा सब होगा [illegible] को भेज रहा हैं—विश्वविद्यालय [illegible] के लिये [illegible] भजन रखन क लिए । [illegible] तुमने [illegible] पैदा करने लेकिन अब उनको [illegible] । [illegible] के इस [illegible] इसमें बच्चा कान [illegible] । [illegible] के सुपाते में [illegible] इज्जा । पत्र-व्यवहार [illegible] ।

[illegible] यथोचित [illegible]

तुम्हारा [illegible]

परिमल